सर्वोदय-विचार

विनोबा

•

१९५२

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५२
मूल्य
बारह आना

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रस्तावना

'सर्वोदय' शब्द अब तो चल पडा है। हर कोई उसकी दुहाई दे रहा है। लोग कहते है, "उस शब्द का बहुत दुरुपयोग भी हो रहा है।" लेकिन मुझे इसका कोई डर नही है, बशर्ते कि चन्द लोग भी उसको सही मानेंगे, अपने जीवन में लाने की कोशिश करेगे। अपरोक्ष अनुभूति से निकले हुए शब्द इतने महान् होते है कि लोगो की ओर से उनका कितना भी दुरुपयोग क्यो न किया जाय, वे उस सबको हजम कर लेते है। वैसा ही, मुझे विश्वास है कि यह सर्वोदय शब्द सब मलिनताओ को खाक कर के अपने स्वच्छ अर्थ में प्रकाशित रहेगा, क्योकि वह ऋषि-दृष्ट है, आत्मानुभूति से निकला हुआ है।

मेरे लिए तो यह शब्द राम-नाम जैसा ही हो गया है। इसलिए करते और बोलते, बैठते, चलते और फिरते, उसी की धुन में रहता हू। गए साल-डेढ साल मे जगह-जगह इस बारे मे सहज-भाव से मेरी जो चर्चाए या भाषण हुए, उनमें से सार-रूपेण कुछ इस पुस्तक मे दिये है। मुझे उम्मीद है कि उससे सर्वोदय-रस के सेवन की दिलचस्पी लोगों मे बढेगी और काम मे कुछ मदद पहुचेगी।

सुरगांव (वर्धा)
२९ मार्च, ५०

—विनोबा

विषय-सूची

स र्वो द य - वि चा र

: १ :

सर्वोदय की विचार-सरणी

एक साल पहले इसी दिन और ठीक इसी समय वह घटना घटी कि जिसके कारण हम सबको हमेशा के लिए शरमिंदा होना पडेगा। लेकिन वह घटना ऐसी भी है कि जिससे हमे चिरतन प्रकाश मिल सकता है। उस घटना ने हमें देह और आत्मा का पृथक्करण अच्छी तरह सिखा दिया है। मुझसे बहुत लोगो ने पूछा कि गाधीजी ईश्वर के नि सीम उपासक थे तो ईश्वर ने उनकी रक्षा क्यो नही की? ईश्वर ने उनकी जो रक्षा की, उससे अधिक रक्षा और हो भी क्या सकती थी? देहासक्ति के कारण हम उसे न पहचाने, यह दूसरी बात है। मुझे यहा कुरान का एक वचन याद आता है, जिसमें कहा गया है कि जो ईश्वर की राह पर चलते हुए कतल किए जाते है। मत समझो कि वे मरे है। वे तो जिंदा है, यद्यपि तुम देखते नही।

> "ला तकूलु लि मंय् युक्तल
> फी सबीलिल्लाहि अम्वात्, बल् अहयाऊं
> वलाकिल् ला तश् उरून्"

ईश्वर की राह पर चलते हुए मरना भी जिन्दगी है और शैतान की राह पर जिन्दा रहना भी मौत है। गाधीजी ने ईश्वर की राह पर, सचाई और भलाई की राह पर, चलने की निरन्तर कोशिश की, उसीकी हिदायत वह लोगो को देते रहे, उसीके लिए वह कतल किये गए। धन्य है उनका जीवन और धन्य है उनकी मृत्यु !

सर्वोदय-विचार

भलाई की राह पर चलने की शिक्षा अनेक सत्पुरुषो ने दी है, लेकिन मानव को अभी पूरा यकीन नही हुआ है कि भलाई से भला होता ही है। वह अभी तक प्रयोग कर रहा है। देखता है कि क्या बुराई बोने से भी भला नही उग सकता ? बबूल बोने से आम, और आम बोने से बबूल उगेगा, ऐसी शका तो उसके मन मे नही आती है। शायद पहले के जमाने में यह शका भी उसको रही होगी, लेकिन अब तो भौतिक सृष्टि मे 'यथा बीज तथा फल' वाला न्याय उसको जच गया है, फिर भी नैतिक सृष्टि में उस न्याय के विषय में उसे शका है। साधारण तौर पर भलाई से भला होता है, यह उसने पाया है। लेकिन खालिस भलाई लाभदायी हो सकती है, ऐसा निर्णय अभी उसके पास नही है।

दूसरे कुछ लोगो को खालिस भलाई मजूर है, लेकिन निजी जीवन में। व्यक्तिगत जीवन में शुद्ध नीति बरतनी चाहिए, उससे मोक्ष तक पा सकते हैं, लेकिन सामाजिक जीवन में भलाई के साथ बुराई का कुछ मिश्रण किये बिना नही चलेगा, ऐसा उनका खयाल है। सत्य और असत्य के मिश्रण पर दुनिया टिकती है, ऐसा यह विचार है। गाधीजी ने इसको कभी नही माना और सत्य, अहिंसा आदि मूलभूत सिद्धातो का अमल सामाजिक तौर पर हमने करवाया, जिसके फलस्वरूप एक किस्म का स्वराज्य भी हमने पाया है। जिस योग्यता का हमारा अमल था उस योग्यता का हमारा यह स्वराज्य है। उसके लिए वे सिद्धान्त जिम्मेदार नही है, हमारा अमल जिम्मेदार है। एक त्रिकोण मे जो सिद्धान्त साबित होता है वह सब त्रिकोणो को लागू होता है। व्यक्ति के लिए अगर शुद्ध नीति कल्याणकारी है तो समाज के लिए भी वह वैसी ही कल्याणकारी होनी चाहिए।

कुछ लोगो का खयाल है कि सत्य की कसौटी पर अपने उद्देश्यो को कस लें तो बस है। फिर साधन कैसे भी हो, चल जायगे। लेकिन गाधीजी ने इस विचार का हमेशा विरोध किया है। उन्होने तो यहा तक कह दिया था कि मै सत्य के लिए स्वराज्य भी छोडने को तैयार होऊगा। मतलब उनका यह नहीं था कि वह स्वराज्य नही चाहते थे। या उसकी कीमत कम समझते

थे। वह तो साधन-शुद्धि का महत्त्व बताना चाहते थे। स्वराज्य के लिए वह जिन्दगी भर लडे। लेकिन वह कहते थे कि स्वराज्य तो सत्यमय सावनो से ही मिल सकता है। शुद्ध सावनो से प्राप्त किया हुआ स्वराज्य ही सच्चा स्वराज्य होगा। साधक को साध्य की अपेक्षा साधन के बारे मे ही अधिक सोचना चाहिए। साधन की जहा पराकाष्ठा होती है, वही साध्य का दर्शन होता है। इसलिए साध्य और साधन का भेद भी काल्पनिक है। साधनो से साध्य हासिल होता है इतना ही नही, बल्कि उसका रूप भी साधनो पर निर्भर रहता है। वैसे, हरेक को अपना उद्देश्य या मकसद अच्छा ही लगता है। इसलिए अच्छे मकसद का दावा कोई खास कीमत नही रखता। साध्य-साधनो मे विसगति नही होनी चाहिए, यह विचार वैसे नया नही है। लेकिन उसका प्रयोग जिस बडे पैमाने पर गाधीजी ने हिन्दुस्तान मे किया, वह बेमिसाल है।

दूसरे कुछ लोग कहते है कि सचाई और भलाई का आग्रह तो अच्छा है, लेकिन हर हालत मे क्रियाशील रहने का महत्त्व अधिक है। अगर भलाई रखने के प्रयत्न में क्रियाशीलता मे बाधा आती है तो भलाई का आग्रह कुछ ढीला करके, या उस आदर्श से कुछ नीचे उतर के, क्रियाशील रहना चाहिए, निष्क्रिय हरगिज नही बनना चाहिए। मै मानता हू कि यह भी एक मोह है। जेल मे जब लोगो को अधिक दिन तक रहना पडता था, तो उसको 'जेल में सडना' नाम दिया जाता था। तब गाधीजी समझाते थे कि शुद्ध पुरुष की निष्क्रियता मे भी महान् शक्ति होती है। गीता ने अपनी अनुपम भाषा में इसी को अकर्म मे कर्म कहा है। क्रियाशीलता नि सशय महान् है। लेकिन सचाई और भलाई उससे भी बढकर है। विशेष परिस्थिति मे निष्क्रिय भी रह सकते है, लेकिन सचाई को कभी छोड नही सकते।

कुछ लोग, जो अपने को व्यवहारवादी कहते है, सचाई पसन्द करते है, लेकिन एकपक्षी सचाई मे खतरा देखते है। कहते है कि सामने वाला अगर असत्य का उपयोग करता है, हिंसा करता है, तो हम ही सत्य और अहिंसा पर डटे रहेगे तो हमारा नुकसान होगा। ये लोग वास्तव मे सचाई का मूल्य ही

नही जानते। अगर जानते होते तो ऐसी दलील नही करते। हमारे प्रतिपक्षी भूखे रहते है तो हम ही क्यो खाय, ऐसी दलील वे नही करते है। जानते है कि जो खायगा, वह ताकत पायेगा। इसका प्रतिपक्षी से कोई सम्बन्ध नही है। एकपक्षी खाना तो मजूर है, लेकिन एकपक्षी सचाई, प्रीति, मजूर नही है। इसका क्या अर्थ है ? सामने वाला जैसा होगा वैसे हम बनेंगे, इसका मतलब यही हुआ कि वह जैसा हमें नचायेगा वैसे हम नाचेंगे। आरम्भ शक्ति या पहल (इनीशिएटिव) हमने उसके हाथ में सौप दी। यह पुरुषार्थ-हीन विचार है और उससे एक दुष्ट-चक्र तैयार होता है। दुर्जनता का एक सिलसिला जारी है। उसको तोडना है तो हिम्मत करनी चाहिए। और निष्ठापूर्वक, परिणाम का हिसाब लगाये बगैर, प्रेम करना चाहिए, उदारता रखनी चाहिए। आखिर सत्य, प्रेम और सज्जनता ही भावरूप चीजें है। असत्यादि अभाव रूप है। प्रकाश और अधकार का यह झगडा है, उसमें प्रकाश को डर कैसा ?

यह है सत्याग्रह की विचार-सरणी, जैसी कि मैं समझा हू। इसी मे सबका भला है, इसलिए इसको सर्वोदय की विचार-सरणी भी कहते है। गाधीजी की हत्या हमारे लिए एक चुनौती है। अगर सचाई में हमारी परम निष्ठा है, उसका अमल हमारे निजी और सामाजिक जीवन में करने की वृत्ति हम रखते है, तभी इस चुनौती को हम स्वीकार कर सकते है, नही तो हम उस चुनौती को स्वीकार नही कर सकते। इतना ही नही, बल्कि इच्छा न रखते हुए हम उस हत्याकारी के पक्ष में ही दाखिल हो जाते है।

मै आशा करता हू कि गाधीजी की देहमुक्ति हममे शक्ति-सचार करेगी और हम सत्यनिष्ठ जीवन जी कर सर्वोदय की तैयारी के अधिकारी बनेंगे।

राजघाट (दिल्ली)
३० जनवरी, १९४९

: २ :

विचार के लिए चार प्रश्न

आज मुझे यहा बोलना होगा, यह तो अभी ही मुझे मालूम हुआ है। किशोरलालभाई के बदले मुझे बोलने के लिए कहा गया है। किशोरलालभाई का आप लोगो से परिचय है। वह 'गाधी-सेवा-सघ' के पाच साल तक अध्यक्ष रहे है। उनके लिए यह काम आसान था। मेरी दशा इससे उल्टी है। यद्यपि मै गाधीजी के पास रहा हू, तो भी उनका पाला हुआ एक जगली जानवर हू। आपसे निजी तौर पर कम-से-कम परिचित कोई था, तो मै था। गाधी-सेवा-सघ का मेम्बर बनने के लिए दो-तीन दफा मुझे सूचित किया गया, लेकिन मैने स्वीकार नही किया। उसके कारणो में मै नही उतरता।

आपमें से बहुतो के चेहरे मेरे लिए नए है। यहा आप लोगो के लिए जो कोठरिया बनी है, उनके दरवाजे पर अन्दर रहनेवालो के नाम लिखे है। एक दिन शाम को उनको पढता हुआ जा रहा था। एक भाई ने पूछा, "नाम तो आप पढते जा रहे है, लेकिन अदर बैठे हुए लोगो के रूप से क्या आप ताल्लुक नही रखते ?" मैने विनोद मे कहा, "रूप से नाम बडा है। जब नाम ही मै कम जानता हू तो फिर रूप क्या जानू ?"

लेकिन मेरे अपरिचय की परसो तो हद हो गई। रात को तीन बजे अकेला उठ कर आश्रम की प्रार्थना मे शरीक होने के लिए निकला। रास्ते मे अधेरा छाया हुआ था, जो मेरा एकमात्र साथी था। बीच मे एक कुत्ते ने आवाज दी, शायद अपने मालिक को जाग्रत करने के लिए। मै चुपचाप आश्रम मे पहुच कर प्रार्थना की जगह बैठ गया। बाद में प्रार्थना के लिए लोग आ गए। उन्होने मुझे देख लिया और मै ही प्रार्थना चलाऊ, ऐसा मुझसे

कहा। मैने कहा, "मैं आपकी प्रार्थना सुनूगा।" इसका कारण यह था कि सेवाग्राम-आश्रम की प्रार्थना का सिलसिला मैं नही जानता था। मैंने अपने मन मे कहा, "अब तो तेरे अपरिचय की हद हो गई।" वैसे प्रार्थना तो भगवान् की मै भी करता हू, जैसे मुझे सूझती है। गाधीजी के बनाये हुए ढाचे मे ही प्रार्थना करनी चाहिए, ऐसा मैंने नही माना है।

तो, ऐसे मनुष्य के लिए आपकी तरफ से खडा हो कर कुछ कहना कितना कठिन है, यह आप समझ सकेंगे। फिर भी आज्ञा हुई है तो मन मे जो विचार उठते है, वे आपके सामने रख देता हू। हमारे बुजुर्ग नेता भी यहा बैठे है। उनसे मार्ग-दर्शन की हम आशा रखते है। बापूजी ने तो कई बार कहा था कि उनके पीछे पडितजी ही उनके वारिस होगे। इसलिए उनके मार्ग-दर्शन के तो हम हकदार भी है।

पहली बात यह कहना चाहता हू जिसका जिक्र सदर साहब ने किया है। बार-बार वह बात दिल में आती है। इतना बडा देश अपनी आजादी पाते ही फौरन इतना गिर जाता है जिसकी कभी कल्पना भी नही की थी। इस देश की यह हालत क्यो हुई ? "आज दुनिया भर में यह हुआ है और महायुद्ध का यह नतीजा है", इतना कह देने से हमारा काम नही हो जाता। हमारा दावा तो यह है कि हमने अपनी आजादी विशेष तरीके से हासिल की है, जैसे दूसरे देशो ने नही की। यद्यपि वह तरीका अख्तियार करने का हमारा ढग कमजोर था, फिर भी हम कामयाब हुए। दुनिया भी हमारा दावा मजूर करती है। लकिन ऐसा दावा करने वाले लोग यकायक कैसे गिर गये ? इसका कारण मै ढूढ रहा हू। लेकिन ठीक जवाब नही मिल रहा है। हम कारणो को जानेंगे तो उनका उपाय कर सकते है।

दूसरी विचार करने की बात प्रातीय भावना की है। जितना सस्कृत साहित्य मैंने पढा, उसमें देश-प्रेम का जहा-जहा जिक्र आया है, वहा, "दुर्लभ भारते जन्म" ऐसा ही वचन आया है। बगाल में या महाराष्ट्र में, या गुजरात में जन्म लेना दुर्लभ है, ऐसा वचन कही नही मिला। यह उस समय की बात है, जब आज के जैसे रेल्वे, पोस्ट आदि यात्रा के साधन नही

थे। उस जमाने मे भी लोगो ने भारत को एक माना और उसमे जन्म लेना भाग्य समझा। उसीको स्वतन्त्र करने के लिए देश भर मे हमने आन्दोलन किया और सबने मिल कर उसमे हिस्सा लिया। लेकिन अब स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर प्रातीय भेद इतने जोरो मे क्यो है ? उसका दौर बढ ही रहा है। उसको कैसे रोका जाय ? वह रोका न जा सका तो आगे चल कर बहुत खतरा पैदा हो सकता है। क्योकि इसमें वही पागलपन के अश है जो हिन्दू-मुस्लिम सवाल में है।

अब तीसरी महत्त्व की बात साधन-शुद्धि की है। मै सोचता हू कि क्या यह कभी मुमकिन हो सकता है कि हिन्दुस्तान भर में एक ही विचार, एक ही "आइडियालॉजी" चलेगी ? अलग-अलग विचार रहने ही वाले है, यह अगर तय है, तो क्या यह जरूरी नही है कि ऐसे मुख्तलिफ विचार रखने वालो को इस नतीजे पर आना ही चाहिए कि अपने विचारो के प्रचार मे अशुद्ध या हिंसात्मक साधनो का उपयोग न करे ? बापू ने अपनी जिंदगी भर हमे यही सिखाया कि, "जैसे हमारे साधन वैसे ही हमारे मकसद होगे।" यानी साधनो का रग मकसद पर चढता है। इसलिए जरूरी होता है कि अच्छे मकसद के लिए साधन भी अच्छे ही होने चाहिए। गाधीजी की हत्या के पीछे एक बडी जमात है। वह हत्या की योजना बनाती है, हत्या होने पर आनद मनाने की तैयारिया करती है, और उसके सारे आयोजन का हम लोगो को पता तक नही रहता। क्या ऐसी जमात, अगर हम साधन-शुद्धि का विचार छोड देते है तो, तारीफ के काबिल नही गिनी जायगी ? अपना मकसद पूरा करने के लिए चाहे जैसे साधन अगर मान्य समझे जाते है तो फिर किसका मकसद ठीक है और किसका बे-ठीक, यह कौन तय करेगा ? हरेक को अपना मकसद ठीक ही लगता है। लेकिन कितने ही अलग-अलग मकसद क्यो न हो, उनकी प्राप्ति के लिए हिंसा और असत्य का उपयोग तो करना ही नही है, इस विषय में सब मिल कर एक मोर्चा बना सकेंगे तो वह बडी चीज होगी। हमे नये सिरे से प्लैनिंग करना है, नई व्यवस्था स्थापित करनी है, नव-रचना करनी है, इत्यादि प्रश्न इस समय जरा किनारे रख कर

यही खयाल पहले पक्का कर लें कि हमें भले साधनों का ही उपयोग करना है।

जिनका ऐसा निश्चय है वे सब हमारे साथ ही हैं, ऐसा हम समझें। हमारी एक विरादरी स्थापन करने का यहा विचार हो रहा है। उसका नाम क्या हो, कौन-कौन उसमे दाखिल किये जाय, आदि चर्चा चली है। मैंने कहा, मुझे नाम नही काम चाहिए। साधन के बारे में हम अपना निश्चय करें। वह हो जाय तो उसके मानने वालो के नामो की मुझे जरूरत नही है। उनके काम ही दुनिया को दिखाई देंगे। कोई खास सघ स्थापन करने से क्या होगा? सघ मे तो चन्द लोगो का ही समावेश होता है।

लेकिन गाधीजी का सघ सारा हिंदुस्तान है, यह हमें समझना चाहिए। एक भाई मुझसे पूछ रहे थे, "गाधीजी के स्मरण के लिए अशोक-स्तम्भ जैसे स्तम्भ खडे किय जाय तो कैसा?" मैंने कहा, "जनता से जा कर पूछो कि वह अशोक के स्तम्भो को कितना जानती है? जनता को अशोक के नाम का भी पता नही। इतिहास मे कई राजा हो गए। उनमे अशोक भी हुआ। वह जरूर एक महान् और दयालु राजा था। लेकिन जनता उसको कहा जानती है? वह तो कबीर, नानक, तुलसीदास को जानती है। वैसे ही गाधीजी का जनता के हृदय में स्थान है। उनके स्मरण के लिए स्तम्भो की क्या जरूरत? उनका तो विचार ले कर हमें जनता में पहुचना चाहिए।"

उनका मुख्य विचार सत्य और शुद्धि का था। साधन-शुद्धि का प्रयोग बडे पैमाने पर गाधीजी ने ही पहली बार किया। मानव-इतिहास में वह एक नई चीज थी। इसी विचार को दृढ कर के बाकी के सारे विचार-भेदो को हम गौण समझे तो कितना अच्छा होगा?

और एक बात। गाधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' शब्द का उपयोग किया। ऐसे शब्दो से जैसे कुछ लाभ होता हैं, वैसे नुकसान भी होता है। 'ट्रस्टीशिप' शब्द के सारे सहचारी भाव (असोसिएशन्स) अच्छे नही हैं। आजकल कुछ बुरे सहचारी भाव भी उसके साथ जुड गये है। 'ट्रस्टीशिप' शब्द की परिभाषा तो हम बोलते है, लेकिन उसके पीछे जो विचार है, उसका अमल करने का बन्धन नही मानते। ऐसा ही रहेगा तो मुझे डर है कि हिंसा टलनेवाली नही

है। हमारे यहा गरीबी इस हद तक है कि गरीब जनता को दूसरी तरह से उभडाना बहुत ही आसान है। और फिर वह अहिंसा से ही काम लेगी, ऐसा नही कह सकते। इसलिए हमें निश्चय करना चाहिए कि 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त का अमल करने की हम पूरी कोशिश करेंगे और ज्यादा जायदाद नही रखेंगे। "इतनी जायदाद जायज और इतनी नाजायज, ऐसी कोई लकीर थोडे ही खीच सकते है," ऐसा कह कर यह बात टाल देंगे तो आगे आने वाला खतरा अटल है। 'ट्रस्टीशिप' शब्द की पावनता का आधार लेकर हमारा ससार हम वैसे ही चलावेंगे, तो अच्छा नाम भी दुर्नाम बन जायगा।

रचनात्मक कार्यकर्त्ता-सम्मेलन,
सेवाग्राम, १३ मार्च, १९४८

'सर्वोदय'-समाज क्यों ?

कल कुछ बातें आपके सामने मैंने रक्खी थी। उससे, मेरे खयाल में, मेरा काम पूरा हो जाता था। लेकिन आज के प्रस्ताव के सबध में भी मैं कुछ कहू, ऐसा तय किया गया है।

आरभ में ही मैं कह देना चाहता हू कि इस प्रस्ताव के समर्थन में मैं खडा हुआ हू। 'सर्वोदय-समाज' के विचार को मैंने क्यो पसद किया, और इसकी बनावट की चर्चा हो रही थी तब कुछ भिन्न विचार मैं क्यो रखता था, यह आप लोगो के सामने रखना ठीक होगा।

इस बार जेल में काफी देखने और सोचने का मौका मिला। कल मैंने जिक्र किया ही था कि मैं एकात में रहनेवाला मनुष्य हू। यद्यपि भगवान् की कृपा से मेरे साथ कुछ साथी रहते है और मेरी मदद करते है, फिर भी मैं एकात-प्रिय ही रहा हू। लेकिन जेल में तो समाज में ही रहना हुआ और उससे सोचने का काफी मसाला मिल गया। वहा सब तरह के लोगो से सबध आया। उनमें काग्रेसवाले थे, समाजवादी थे, फॉर्वर्ड ब्लॉक वाले थे, दूसरे भी थे। देखा कि ऐसा कोई खास पक्ष नही है जिसमें दूसरे पक्षो की तुलना में अधिक सज्जनता दिखाई देती हो। जो सज्जनता गाधीवालो में दिखाई देती है, वह दूसरो में भी दिखाई देती है और जो दुर्जनता दूसरो में पाई जाती है, वह इनमें भी पाई जाती है। सज्जनता किसी एक पक्ष की चीज नही है, यह जब मैंने देखा तब सोचने पर इस निर्णय पर पहुचा कि किसी खास पक्ष में या सस्था मे रहकर मेरा काम नही चलेगा। सबसे अलग रहकर सज्जनता की ही सेवा मुझे करनी चाहिए। जेल से

छूटने के बाद यह विचार मैंने गाधीजी के सामने रक्खा। उन्होंने अपनी भाषा में कहा, "तेरा अभिप्राय मै समझ गया। तू सेवा करेगा, लेकिन अधिकार नही रखेगा। यह ठीक ही है।" इसके बाद जिन-जिन सस्थाओ में मै था, उनसे इस्तीफा देकर अलग हो गया। वे सस्थाये मुझे प्राण-समान थी। उनके उद्देश्यो और कार्यक्रमो को अमल मे लाने की कोशिश बरसो से मै करता आया था। उनसे अलग होते समय दु ख जरूर हुआ। लेकिन आनद का भी अनुभव किया। क्योकि उन सस्थाओ की मदद तो मैं करने ही वाला था। लेकिन अहिंसा के विकास के लिए मुक्त रहना जरूरी समझता था। हा, इसके साथ मै यदि इस नतीजे पर आया होता—जैसा कि शकररावजी ने सूचित किया—कि "कोई भी सस्था जब बनती है तब उसमे थोडी हिंसा तो आ ही जाती है" तो उतनी थोडी हिंसा की भी गुजाइश मै नही रखता। और आप लोगो को यही कहता कि "किसी भी सस्था मे आप न जाय।"

शस्त्रो के बारे मे आज हम इस नतीजे पर आये है कि शस्त्रधारण करने से हिंसा ही बढती है। लेकिन एक जमाना था जब कि धर्म या सत्पथ की रक्षा के लिए दयालु पुरुषो ने शस्त्र-धारण करना जरूरी समझा था। उस जमाने मे शस्त्रो का कुछ बचाव भी हो सकता था। लेकिन आज तो हम इस निर्णय पर आये है कि शस्त्रो से लाभ नही होता। हानि ही होती है। पुराने जमाने मे भी शस्त्रो पर भरोसा न रखनेवाले कुछ व्यक्ति थे। लेकिन वे व्यक्तिगत जीवन मे ही वैसी श्रद्धा रखते थे। सारे समाज को शस्त्र छोडने के लिए कहने की हिम्मत वे भी नही करते थे। तुकाराम महाराज से यदि शिवाजी महाराज पूछते कि "क्या शस्त्र छोड देने की आप मुझे सलाह देगे", तो शायद तुकाराम यही कहते कि "तुम्हारी प्रवृत्ति को देखते हुए तुम्हे शस्त्र छोडने के लिए मै नही कहूगा। यद्यपि मेरी प्रवृत्ति मुझे शस्त्र-धारण को नही कहती। अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार चलना ही धर्म हो जाता है।" लेकिन आज की विज्ञान की गति को देखते हुए शस्त्रो के उपयोग से जो अपार हानि होगी, उसकी तुलना मे उनसे

होने वाला लाभ इतना नगण्य है कि उसको हिसाब में भी नही गिना जायगा।

इसलिए जब हम लोग इस निर्णय पर आये है कि शस्त्रो से तो हिंसा ही होती है। वैसे इस निर्णय पर अबतक नही आया हू कि अगर सस्था बनती है तो उसमे कुछ-न-कुछ हिंसा आ ही जाती है। शकररावजी ने इसके लिए जो दृष्टात दिया है, उसको भी मै सुधारना चाहता हू। मनुष्य मे हिंसा का अश होता है, इसलिए जहा दो मनुष्य इकट्ठा होते है, वहा हिंसा आने ही वाली है, यह एक सामान्य बात उन्होने कही। लेकिन वह हमेशा का नियम नही है। मुझमे हिंसा है। लेकिन मै जब किशोरलाल-भाई जैसे पुरुष के साथ काम करता हू तब मेरी हिंसा कम हो जाती है। यानी सज्जन लोग जब इकट्ठा होते है तब हिंसा कम हो जाती है। "एक से दो भले" हम कहते ही है न ?

हा, ऐसी सस्था जब हम बनाते है जहा कुछ अनुशासन है, और उस अनुशासन को न माननेवालो के खिलाफ कार्रवाई करनी पडती है, वहा हिंसा का सभव रहता है। लेकिन वहा भी किसी पर सस्था में दाखिल होने का अगर बधन नही है और सस्था के नियम जाहिर किये गए है, तो बात दूसरी हो जाती है। सस्था में शामिल न होने की हरएक को स्वतन्त्रता है। शामिल होने पर भी कुछ नियमो का पालन हम नही कर सकते है तो सस्था से स्वेच्छापूर्वक हटने का भी मौका है। लेकिन जो आदमी अपनी इच्छा से ऐसी सस्था मे दाखिल होता है, फिर नियमो का पालन ठीक नही करता और तिसपर भी सस्था के अन्दर रहने का आग्रह रखता है, उसके खिलाफ मजबूर होकर सस्था को अनुशासन की कार्रवाई करनी पडती है तो इस कार्रवाई का बचाव भी हो सकता है। फिर भी उसमे हिंसा का अश दाखिल होना सभव है। लेकिन ऐसे अनुशासन की भी जहा गुजाइश नही है, वहा हिंसा का सवाल नही आता है। 'सर्वोदय-समाज' ऐसी सस्था है। यहा अनुशासन नही है। इससे बहुत सारे खतरे मिट जाते है। इसलिए मै इसका समर्थन कर रहा हू।

अब नाम के बारे में कुछ कहना चाहिए। 'सघ' न कहते हुए जो 'समाज'

शब्द रक्खा है, वह साहित्यिक दृष्टि से नही रक्खा है। इसके पीछे विचार है। सघ शब्द मे विशिष्ट अर्थ है। उसमे व्यापकता की कमी है। समाज व्यापक है और 'सर्वोदय' शब्द के कारण उसकी व्यापकता परिपूर्ण हो जाती है। नाम का परिवर्तन एक महत्त्व की चीज होती है। बहुत सारा काम नाम से ही हो जाता है। जीवन मे परिवर्त्तन करने की शक्ति अच्छे नामो मे होती है।

अब 'सर्वोदय' के बारे मे थोडा कह दू। अमतुस्सलाम ने चिट्ठी भेजी है। उसमे वह कहती है कि 'सर्वोदय' शब्द हमारे देहाती भाई आसानी से नही समझ सकेगे। उन्होने सुझाया है कि इसमे गाधीजी का नाम जोड दिया जाय। उनकी भावना से मेरी सहानुभूति है और मै मानता हू कि जैसे किसी व्यक्ति का नाम रखने मे कुछ दोष आ जाता है, वैसे उस नाम को टालने मे भी दोष हो सकता है। लेकिन मेरी सूचना है कि इस बारे मे आग्रह न रक्खा जाय। गाधीजी ने देह छोडते वक्त भगवान् का नाम लिया था। उसीका आश्रय लेकर हम काम करे। उसीसे हमे स्फूर्त्ति और मार्ग-दर्शन भी मिलेगा।

'सर्वोदय' शब्द देहाती भाइयो के लिए कुछ कठिन हो सकता है। लेकिन यह कबूल करते हुए भी मुझे कहना है कि यही नाम रक्खा जाय। 'सत्याग्रह' शब्द भी वैसे कठिन था। लेकिन प्रत्यक्ष कृति से वह आसान बन गया। वैसे ही यह शब्द एकदम नया भी नही है, गाधीजी का बनाया हुआ है। गाधीजी ने रस्किन की 'अन् टु दिस लास्ट' नाम की किताब का अनुवाद किया है। उसका उन्होने 'सर्वोदय' नाम रक्खा था। ऊच और नीच सबके मानवी अधिकार समान है, यह तत्त्व उसमे बतलाया है। उसीको गाधीजी ने 'सर्वोदय' का विचार कहा। गाधीजी के विचारो का प्रचार करनेवाली जो मासिक पत्रिका निकली थी, उसे भी 'सर्वोदय' नाम दिया था। 'नवजीवन' शब्द जब निकला था तब कठिन ही था। विशेष अर्थ बतानेवाले शब्दो का कठिन होना कोई आपत्ति नही है। ऐसे कठिन शब्द समझाने के निमित्त से जनता के हृदय तक पहुचने का मौका मुझे मिलता है और

जनता के ज्ञान में वृद्धि होती है। विशेष शब्द लाने का लाभ यह है कि उसे सुनते ही लोग हमें पूछेंगे, "भाई इसका अर्थ क्या है?" इससे देहाती भाइयों को पाठ देने का पहला मौका उस नाम से ही मुझे मिल जाता है। उसके बदले उनके परिचय का कोई नाम यदि मैं रखता हूं तो मेरी जरूरत ही कहा रही? फिर मैं ही खतम हो जाता हूं। 'सर्वोदय' शब्द समझाते समय भी अगर मैं कठिन शब्दो से काम लूगा तो मुझे पर जरूर आक्षेप लागू होगा। लेकिन मैं तो ऐसे ही शब्दो में समझाऊंगा, जिन्हे वे आसानी से समझ सकते हो, इसलिए यह शब्द की चर्चा अब मैं छोड देता हू।

इस प्रस्ताव के पीछे एक महान् विचार है। एक गाधी गया, उनकी जगह करोडो गाधी पैदा हो, ऐसी शक्ति उसमे है। यह सस्था न तो नियत्रण करनेवाली है, न कोई सत्ता चलानेवाली है, न गाधीजी के सिद्धातो का अर्थ बतानेवाली है। इसीलिए इसमे कोई भय नही है। इस प्रस्ताव में जो विचार है, वह शान्ति करनेवाला है। आखिर 'गाधीजी के सिद्धान्त' जिन्हें कहा जाता है, वे आये कहा से? क्या वे गाधीजी के बाप के थे? सिद्धान्त किसीके बाप के नही होते। वे तो आत्मा के सिद्धात थे। वही आत्मा आपमे और मुझमें मौजूद है। इसलिए वे हम सब के सिद्धान्त है। जो उन्हे मानता है, उसके वे सिद्धान्त है। इन सिद्धान्तो को अपना समझ कर हम चलेंगे तभी काम होगा। हम सत्य का आग्रह रक्खेंगे तो क्या गाधीजी कहते है इसलिए? क्या गाधीजी के कारण सत्य की प्रतिष्ठा है? या सत्य के कारण गाधीजी की प्रतिष्ठा है? एक भाई ने मुझसे कहा, "गाधीजी ने शरीर-परिश्रम को अपना कर उसकी प्रतिष्ठा बढाई।" मुझसे रहा नही गया। मैंने कहा, "गाधीजी कौन थे जो श्रम को प्रतिष्ठा देते? शरीर-परिश्रम को अपनाकर गाधीजी ने खुद प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सिद्धान्त व्यक्ति से बढ कर होते हैं। इसलिए उनका अमल करके व्यक्ति प्रतिष्ठा पाते है।"

गाधीजी से तो मैंने भर-भर कर पाया है। लेकिन उनके अलावा औरो से भी पाया है। जहा-जहा से जो मिला, वह मैंने मेरा कर लिया। अब वह सारी पूजी मेरी हो गई है। उसमे से गाधीजी की दी हुई कितनी है

और दूसरे की दी हुई कितनी है, इसका अलग-अलग हिसाब भी मेरे पास नही है। जो वि चार मैने सुना, वह अगर मुझे जच गया और उसे मैने हजम कर लिया तो फिर वह मेरा ही हो गया। वह अलग कैसे रहेगा ? मैने केले खाये और हजम किये, उनका मास मेरे शरीर पर चढा। अब वे केले कहा रहे ? वे तो मेरा जिस्म बन गये। इसी तरह से जो विचार मैने अपनाया, वह मेरा ही हो गया। और फिर मेरी चीज मे मुझे जो ममता होती है, उसी ममता से उस विचार को मै दूसरो के सामन रक्खूगा। 'घर किसका ?' तो बोले, 'मेरा।' घर मेरा, जायदाद मेरी, और सिद्धान्त या विचार गाधीजी के ! यह कैसी बात है ? अगर सिद्धान्त गाधीजी के है तो घर और जायदाद भी गाधीजी की है, ऐसा क्यो नही कहते ? गाधीजी के कोई सिद्धान्त होते तो मृत्यु के बाद वे अपने साथ उन्हे ले गये होते। लेकिन वैसा नही है। सिद्धात गाधीजी के नही है, बल्कि गाधीजी द्वारा प्रकट हुए है। उन्हे जब मै ग्रहण करता हू तब वे मेरे ही बन जाते है। उन्हे लोगो के सामने रखते समय गाधीजी के नाम से रखने की जरूरत नही है। स्वतत्र रूप से लोगो को विचार समझा सकते है। वे लोगो की बुद्धि को जच जाय, उनके बन जाय, तभी उनका अमल वे करे, ऐसा मै कहूगा। इस तरह काम करेगे तो हिन्दुस्तान का काया पलट हो जायगा। मत्र के अक्षर कागज पर लिखे होते है। उनको समझ कर अपने जीवन मे उनके अनुसार जो परिवर्तन करता है, उसको वे काम आते है। नही तो, एक कीडा उन मत्रो को कागज-सहित पूरा खा जाता है, फिर भी कोई लाभ उसे नही होता। यही विचारो का हाल है।

इस प्रस्ताव में यह भी बात लिखी है कि 'सर्वोदय-समाज' के विचारो को माननेवाले अपने-अपने नाम पोस्टकार्ड द्वारा भेज दे, ताकि उनकी फेहरिस्त रखी जा सके। मै नही समझ पाया हूं कि ऐसी फेहरिस्त का हम क्या करेगे ? फिर भी मैने अनुमति दे दी, क्योकि मैने देखा कि उससे हमारे भाइयो को सतोष होता है। लेकिन इससे यह नही समझा जाय कि 'सर्वोदय-समाज' के वे ही सेवक है जिन्होने अपने नाम भेजे है। जिनके नाम दफ्तर में दर्ज नही है, लेकिन जो इसी काम को कर रहे है, वे भी इस समाज के

ताकत हमें मिल सकती है, यह वस्तु हम समझे और प्रस्ताव मे लिखे बिना उसे जीवन में मुख्य स्थान दे।

मेरा आपसे निवेदन है कि आपके सामने जो प्रस्ताव आया है, उसे आप मजूर करे और उसका यथाशक्ति अमल करे।

रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन,
सेवाग्राम, १४ मार्च, १९४८

: ४ :

साधन-शुद्धि का सिद्धान्त

मै इस प्रस्ताव की ताईद करने के लिए खडा हुआ हू । बापू के जाने की खबर जब मुझे मिली तब दो-तीन दिन तक मेरा चित्त केवल शात रहा। मेरी कुछ ऐसी आदत है कि किसी चीज का मुझ पर एकदम असर नही होता। वैसे इस घटना का भी हुआ । लेकिन दो-तीन दिनो के बाद असर होने लगा और चित्त में व्याकुलता भी आ गई। उन दिनो गोपुरी में रोज प्रार्थना में बोलना पडता था। सेवाग्राम के आश्रम में भी तीन दिन मै बोला। पहले रोज वहा प्रार्थना-भूमि पर जब मैं बोलने लगा तो मेरी आखो से आसू गिरने लगे। यह बात सुन कर किसी भाई ने पूछा, "क्या विनोबा भी रोये ?" मैंने कहा, "हा भाई, मुझे भी भगवान् ने हृदय दिया है । उसके लिए मैं भगवान् का उपकार मानता हू ।" लेकिन मेरी आखो में आसू आये, वे बापू की मृत्यु के लिए नही थे, क्योकि मै मानता हू कि उनकी मृत्यु तो ठीक वैसी ही हुई जैसी किसी भी महापुरुष की हो सकती है । इसलिए मेरे लिए तो वह आनद की ही बात थी । मुझे दु ख इस बात का था कि हमारे भाइयो की इस हत्याकारी मनोवृत्ति को मै रोक नही सका। यहा तक कि पवनार से भी कुछ लोग आर एस एस के मामले में गिरफ्तार किये गए। वे गुनहगार ही होगे, ऐसा मै नही मानता। कुछ भी हो, लेकिन भावार्थ यह हुआ कि जिस गाव मे मै दस सालो से रहता हू, वहा वालो के हृदय तक भी मैं नही पहुचा, और इसी बात का मुझे बडा दु ख हुआ।

यह जो प्रस्ताव आपके सामने रखा गया है, उसके पहले हिस्से में एक महान् विचार है। हमे समझना चाहिए कि सारे हिन्दुस्तान में सबका

एक ही मकसद होना असभव है। ऐसी स्थिति मे अपने-अपने मकसद के लिए लोग जो साधन इस्तेमाल करेगे, वे अगर सच्चे और अहिंसक न रहे तो हिंदुस्तान के टुकडे-टुकडे हो जानेवाले है। हिंदुस्तान मे यह घटना जिस प्रकार घटी, उसका दु ख मेरे दिल मे इतना है कि उसे प्रकट करने मे मेरी वाणी असमर्थ है। लेकिन इसका सारा दोप आर० एस० एस० वालो पर रखने से हमारा काम नही होगा। वे तो हमसे भिन्न विचार रखनवाले है। लेकिन उनमे भी कुछ भले और त्यागी लोग तो पडे ही है। उनका हमे आदर भी करना चाहिए। दोष तो हमे अपना ही देखना चाहिए। सन् १९४२ मे हमने क्या किया? उसमे छिपे तरीके काम मे लाये, हिंसा भी की। और यह सारा गाधीजी के नाम पर किया। इतना ही नही, बल्कि उसका बचाव भी किया। ऐसा यदि है तो हमसे भिन्न विचार रखनेवाले उसी तरहके छिपे और हिसात्मक तरीको से काम करे तो हम उन्हें क्या कहे?

इस प्रश्न पर मैने काफी अन्त शोधन किया। अन्त मे इस नतीजे पर आया कि हमारे मकसद कितने भी अच्छे क्यो न हो, उनकी पूर्त्ति के लिए हम अच्छे ही साधन इस्तेमाल करेगे, ऐसा आग्रह अपने जीवन मे रखनेवालो का एक आम मोरचा (कॉमन फ्रण्ट) हमे बनाना चाहिए। चन्द लोग ही क्यो न हो, पर इस बात को मजूर कर के अपने जीवन मे उसका अमल करने का आग्रह रखनेवाले होने चाहिए। तब वह एक नैतिक मोरचा (मॉरल फ्रण्ट) बन जाता है और उसीकी आज बहुत जरूरत है।

पुलिस-बन्दोबस्त के अन्दर हमारी यह परिषद् हो रही है, यह कितने दु ख की बात है। इससे व्याकुल हो कर कुमारप्पा तो कुछ देर परिषद् मे गैर-हाजिर रहे। लेकिन उनके साथ सहानुभूति रखते हुए भी मै मानता हू कि इसके सिवा चारा नही था। इसका अधिक-से-अधिक दु ख प० जवाहर-लालजी को हुआ है, जिसे उन्होने अपने भाषण मे प्रकट भी किया। उन्होने कहा, "अहमदनगर के किले मे हम कैद थे, लेकिन तब हम आजाद थे। कैद अब महसूस होती है।" उन्होने यह भी कहा कि देखेगे, एक-दो महीनो तक कैसे चलता है। लेकिन अगर इस चीज को वे सहन नही करेगे

और पहले जैसे खुले घूमने लगेंगे तो मै कहूगा कि आप मेरे जैसे नालायको के प्रतिनिधि बनने योग्य नही है , क्योंकि मैं तो ऐसा मनुष्य हू जो अपने गाववालो को भी नही सम्हाल सकता।

अपना यह दु ख किस भाषा में मैं प्रकट करू ? मै तो मानता हू कि बापू की हत्या की जिम्मेदारी हमारे ऊपर है। बापू ने बार-बार हमसे कहा कि अपने साधन शुद्ध रक्खो। हम उस बात में ऊपर-ऊपर से तो 'हा' करते गए, लेकिन उसके अनुसार हमने अपना जीवन नही बदला। ऐन मौके पर तो हमने असत्य और हिंसा से ही काम लिया। उसीका फल भगवान् हमे चखा रहा है, ऐसा मै मानता हू।

पण्डितजी ने अपने भाषण में एक बात बहुत ही सहजता से कही। उन्होने कहा कि जब बापू हमसे यह कहते थे कि अग्रेजो के साथ अहिंसा से ही लडो तब उनकी बात से मै सहमत हो गया , क्योंकि मैंने सोचा कि यदि अग्रेजो से लडने के निमित्त हिंसा को हिंदुस्तान में स्थान मिला तो उनके चले जाने पर वह हिंसा सारे हिंदुस्तान को खा जायगी। कितनी सरल दलील है यह।

लेकिन मै देखता हू कि हमने इस चीज को अभी गहराई मे नही सोचा है। क्या अहिंसा हमेशा का ही नियम है ? क्या ऐसा मौका नही हो सकता जब कि हिंसा का उपयोग करना पडे ? ऐसी भी शका हमे हुआ करती है। आज ही हमारे एक भाई ने सदर साहब को एक पत्र लिखा, जिसमें कुछ-कुछ प्रसगो पर हिंसा का सहारा लेने की सहूलियत रहनी चाहिए, ऐसी सूचना है।

इस सूचना पर टीका तो क्या करू, लेकिन इससे दीखता है कि अभी भी हमारा दिमाग साफ नही है। अहिंसा के पालन मे रिआयत की माग क्यो होती है ? अहिंसा की शर्त्त कडी क्यो लगती है ? मान लो कि हमें इमारत बनानी है। विज्ञान कहता है कि दीवार समकोण मे, याने ९०° अश में, ही खडी करनी होगी। तब क्या उसकी शर्त्त हम कडी मानेंगे ? जब हम जानते है कि इमारत ९०° अश में खडी नही करते है तो गिर जाती है, तो हम ऐसा थोडे ही कहते है कि वह ८५° या ८०° अश में

क्यो न खडी की जाय ? ९०° अश का आग्रह रखते हुए भी बनाने मे कुछ कसर रह गई तो वह दूसरी बात है। लेकिन छूट या अपवाद की गुंजाइश पहले से ही हम क्यो रक्खें ? यह गुजाइश आगे चल कर बढ जाती है और हमे पूरा ही खा जाती है। मान लो कि किसी खेत के इर्द गिर्द बाढ लगा दी और बीच मे कुछ जगह वैसी ही छोड दी तो क्या होगा ? भैसे वहा से घुस कर सारा खेत खा जायगी। इसी तरह इस बात को सोचो। अहिसा का आग्रह रखने के बाद, उसका अमल करने की पूरी कोशिश करते हुए कभी भूल हो सकती है, लेकिन पहले से ही उसके लिए गुजाइश नही रखनी चाहिए।

अब प्रस्ताव के आखिरी हिस्से के बारे मे। उसमे शरणार्थियो की सेवा की बात है। उस सेवा की आज अत्यन्त जरूरत है और देश के सामने वह एक बडी भारी समस्या है, इसमे कोई शक नही है। लेकिन मुख्य बात पहली ही है। सत्य-अहिंसा से ही काम लेगे, ऐसी हमे प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए। ऐसा मनुष्य अपनी जगह रह कर भी जो काम करेगा, उससे वह हिंदुस्तान को बचायेगा। कृपलानीजी ने अपने सुन्दर भाषण मे एक बहुत महत्त्व की बात कही। उन्होने कहा कि सेवा के काम जब किसी इन्किलाबी सिद्धान्तो से जोड दिये जाते है तब उनसे ताकत पैदा होती है। हमारे साधन सच्चे ही होने चाहिए, यह एक क्रातिकारी सिद्धात है। उसके साथ शरणार्थियो की सेवा को इस प्रस्ताव मे जोड दिया है। बुरे साधनो का नतीजा ही ये शरणार्थी है। साधन-शुद्धि का सकल्प करके अगर हम उनकी सेवा मे लग जाते है तो हमारे जीवन मे क्राति हो जायगी। और हमारे जीवन मे जब क्राति हो तो अन्त मे सारी दुनिया में वह होगी।

आज दोपहर की बैठक मे, नये कार्यकर्त्ता तैयार करने की कुछ व्यवस्था होनी चाहिए, इस विषय पर चर्चा चल रही थी। कार्यकर्त्ताओ के अभाव मे काम रुक रहा है, ऐसा जाजूजी कहते थे। हमारे पूर्वजो ने तो बार-बार इस बात को समझाया है कि आप किसी भी काम को करते रहिये, उसके साथ स्वाध्याय और प्रवचन होना ही चाहिए। मै तो इस विचार का प्रति

दिन अमल करता आया हू । लेकिन सारे हिंदुस्तान की दृष्टि से देखा जाय तो यह आक्षेप सही है कि हमने इस ओर ध्यान नही दिया । इसलिए नये कार्यकर्त्ता तैयार करने के लिए शिक्षण की कोई व्यवस्था होनी चाहिए। उसके लिए लायक आदमी चाहिए और अपना चालू काम छोडकर ही उनको इस काम मे लग जाना चाहिए, ऐसी हालत थी । क्योकि लायक मनुष्य बेकार नही होते और बेकार मनुष्य लायक नही होते । तब यह समस्या कैसे हल हो ? एक-एक से पूछा जा रहा था । अपना-अपना काम छोडना हरएक को मुश्किल हो रहा था । आखिर हरिभाऊजी (उपाध्याय) से पूछा गया तो उन्होने कहा कि अगर मं अपना चालू काम छोड सकू तो शिक्षण का काम मै अच्छी तरह कर सकूगा। उसके लिए जरूरी व्यवस्था भी हमारे पास मौजूद है । लेकिन चालू काम छोडना ही है तो शरणार्थियो की सेवा में लग जाने की इच्छा होगी। यह सुनते ही बिजली जैसा एक विचार मुझे सूझ गया। मैने कहा, ठीक है। शरणार्थियो के काम के लिए अगर अपना स्थान छोडने की हमारी तैयारी है, तो वही हमारा विद्यालय क्यो न हो ? हमारे लोग शरणार्थियो में जायगे तो उनके साथ हम ८-१० विद्यार्थी देगे। वे काम मे मदद देगे और साथ-साथ तालीम भी पायगे । 'काम करते-करते तालीम पाना' यही तो हमारी शिक्षण-दृष्टि है। इसलिए शरणार्थियो के काम मे लग जाने की अगर तैयारी होती है तो कार्यकर्त्ताओ को शिक्षण देने का प्रश्न अच्छी तरह हल हो सकता है । लेकिन इस काम में पडने की वृत्ति क्षणिक उत्साह से नही होनी चाहिए। वृतियुक्त उत्साह चाहिए।

जो लोग इस काम मे लगेंगे, वे शिक्षक की योग्यता रखते हो तो उस हैसियत से आवें, जो वैसी योग्यता न रखते हो, वे अपने को विद्यार्थी समझ कर आवे। उनको काम करते-करते उत्तम शिक्षा मिलेगी । शरणार्थियो की सेवा का काम समाप्त होने पर फिर अपने प्रांतो में वे लोग उत्तम विद्यालय चला सकेगे।

इसलिए क्षणिक उत्साह से नही, लेकिन पूरा सोच कर और साधनो के बारे मे दृढ निष्ठा बना कर, हम इस काम मे लग जाय तो देश का और

दुनिया का बहुत भला होगा। देश पर आई हुई महान् आपत्ति भी सम्पत्ति का रूप ले लेगी।

रचनात्मक कार्यकर्त्ता सम्मेलन,
सेवाग्राम, १५ मार्च, १९४८

: ५ :

'सर्वोदय' का सरल अर्थ

'सर्वोदय' एक ऐसा अर्थघन शब्द है कि उसका जितना अधिक चिन्तन और प्रयोग हम करते जायगे, उतना ही अधिक अर्थ हम उससे पाते जायगे। सारा अर्थ एकदम सूझनेवाला नही है। आहिस्ता-आहिस्ता वह सूझेगा। लेकिन उसका एक अर्थ स्पष्ट है कि जब भगवान् ने मानव-समाज का इस दुनिया में निर्माण किया है तो मानव का आपस-आपस मे विरोध हो, एक का हित दूसरे के हित के विरोध मे हो, यह मन्शा कदापि नही हो सकती। कोई बाप यह नही चाहता कि एक लडके का हित दूसरे के हित के विरोध में हो। लडको में विचार-भेद हो सकता है, लेकिन हित-विरोध नही हो सकता। भिन्न-भिन्न विचार हो तो ऐसे अनेक विचार मिलकर एक पूर्ण विचार बन सकता है, क्योकि किसी एक आदमी को पूर्ण विचार सूझे, यह हो नही सकता। एक को एक अग सूझेगा, दूसरे को दूसरा अग सूझेगा तो तीसरे को तीसरा अग सूझेगा और इस तरह मिल कर एक पूर्ण विचार होगा। इसलिए विचार-भेदो का होना जरूरी है। इसमें दोष नही है, बल्कि गुण ही है। लेकिन हित-विरोध नही होना चाहिए।

लेकिन हमने अपना जीवन ऐसा बनाया है कि एक के हित मे दूसरे के हित का विरोध पैदा होता है। धन आदि जिन चीजो को हम लाभदायी मानते है, उनका सामनेवाले की परवाह किए बगैर ही और कभी-कभी उससे छीन कर भी सग्रह करते है। प्रेम से भी अधिक कीमत धन को, यानी सुवर्ण को हमने दे रखी है। ऐसी सुवर्णमयी दुनिया में फैल गई है। उसीका नतीजा है कि जो परस्पर मेल या समन्वय आसान होना चाहिए था, वह

मुश्किल हो गया है । उस मेल की शोध मे कई राजकीय, सामाजिक और आर्थिक शास्त्र बन गये है, फिर भी सबका हित नही सध रहा है। लेकिन हम एक सादी वात समझ लेगे तो वह सधेगा । हरएक व्यक्ति दूसरे की फिक्र रक्खे और अपनी फिक्र भी ऐसी न रक्खे कि जिससे दूसरे को तकलीफ हो। यही कुटुम्ब मे होता भी है। कुटुम्ब का यह न्याय समाज को लागू करना कठिन नही होना चाहिए, वल्कि आसान होना चाहिए। इसीको 'सर्वोदय' कहते है ।

'सर्वोदय' का यह एक वहुत ही सरल और स्पष्ट अर्थ है। हम जैसे-जैसे प्रयोग करते जायेगे, वैसे-वैसे ही उसके और भी अर्थ निकलेगे । लेकिन यह उसका कम-से-कम और स्पष्ट अर्थ है और इसीसे यह प्रेरणा मिलती है कि हमें दूसरे की कमाई का नही खाना चाहिए । हमें अपना भार दूसरो पर नही डालना चाहिए। हमे अपनी कमाई का खाना चाहिए। दूसरे का धन किसी तरह हम ले ले, इसे अपनी कमाई नही कहा जा सकता। कमाई का अर्थ है प्रत्यक्ष पैदाइश। ये दो नियम हम ले ले तो सर्वोदय-समाज का प्रचार दुनिया मे हो सकेगा ।

एक छोटा-सा वच्चा भी सर्वोदय-समाज का सेवक बन सकता है अगर वह दूसरे की सेवा करता है और कुछ-न-कुछ पैदा करता है । इस तरह समाज के लाखो-करोडो सेवक बन जायगे । अभी उन सेवको का रजिस्टर रक्खा जाता है, लेकिन तब ऐसी नौबत आयगी कि किन-किनके नाम रजिस्टर में लिक्खे जाय, क्योकि सारी दुनिया अपना नाम इसमे देगी । मै प्रभु से प्रार्थना करता हू कि ऐसा दिन आवे ।

सर्वोदय-समाज,
राऊ (इन्दौर) ८ जून, १९४९

: ६ :

सर्वोदय की सिद्धि का मार्ग

आज इस अवसर पर मुझे एक विशेष ही आनन्द की अनुभूति हो रही है। आप सब वैष्णवजन होने की इच्छा रखनेवाले है और वैसी कोशिश करनेवाले है। आप लोगो की इस सगति को मैं अपना भाग्य मानता हू। यहा हम लोग कुछ चर्चा करेगे और शायद उसमे से कुछ नतीजा लायगे। लेकिन मेरे लिए उन चर्चाओ से और नतीजो से विशेष लाभदायी बात यह मालूम होती है कि हम सब साथ मिल रहे है। आज सुबह मित्रो मे चर्चा हो रही थी कि हम हर साल एक सम्मेलन करें। सम्मेलन किसलिए ? मैंने सुझाया—"सेवको के आपस के सम्पर्क के लिए।" वह सूचना तो स्वीकार कर ली गई, पर उसमे सुधार के तौर पर यह शब्द और बढाये गए—"विचार-विनिमय के लिए।" जब इकट्ठा होते है तो विचार-विनिमय तो हम करेंगे ही। इसलिए इस शब्द को लाने मे कोई हर्ज तो है ही नही। लेकिन मेरे मन में 'सम्पर्क' शब्द ही काफी था, क्योकि शब्दो से जो विचार-विनिमय हम करते है, उससे भी अधिक गहरा विचार-विनिमय मन से, मौन से, एक हवा में बैठने से, एक श्रद्धा की अनुभूति में, एक मत्र का मानसिक मनन करने में, कर सकते है। हम सबने यहा एकत्रित होकर अभी कात लिया। यह दृश्य इन दिनो दुर्लभ-सा हो गया है। मैं इसका अत्यन्त प्यासा हू। इसलिए जब मैं इस उपासना मे सब भाई-बहनो के साथ शामिल होता हू तो चित्त मे एक ऐसी अवस्था का अनुभव करता हू कि जिसको शायद 'समाधि' कहना गैरवाजिब न होगा। मेरी दृष्टि से यही मेरा आनन्द है कि हम सब साथ आए है, एकत्र होकर भगवान् का

नाम लेते है। हमको को एक मार्ग-दर्शक मिला था। अगर हम उसके मार्ग-दर्शन मे चलने की फिर से प्रतिज्ञा करते है तो यह हमारे लिए बहुत है, इसीसे हमारा पुण्य-पुंज बढेगा, शक्ति बढेगी।

हमारा यह सगठन एक ढोला-ढाला सगठन कहा जाता है। शब्द हमेशा विचार को ठीक बतलाता है,ऐसी बात नही है। अगर इसे सगठन ही कहना है तो मै इसे सहज सगठन कहना चाहूगा। बेहतर तो यही है कि हम अपने मन मे समझें कि यह असगठन है। यह रचना नही है, बल्कि सहज सम्पर्क है। इस पर लोग आक्षेप करते है कि ढीले सगठन से क्या लाभ होगा? मेरे खयाल से वह आक्षेप सही भी है। हम अगर एक यत्र चलाना चाहते है तो उस यत्र को कसा हुआ होना चाहिए। यदि घर्षण के डर से हम उसे ढीला रक्खे तो वह यत्र काम नही देगा, यह यत्र-शास्त्र है। तो फिर करना क्या चाहिए? करना यही चाहिए कि यदि यत्र चलाना है तो उसे चुस्त रक्खा जाय और यह ध्यान रखकर कि उसमे घर्षण होगा, उसमे स्नेहन के लिए तेल डाला जाय। घर्षण के डर से यत्र ढीला रक्खेगे तो न घर्षण होगा और न तेल की भी जरूरत होगी---लेकिन साथ-साथ उस यत्र से कुछ काम भी नही होगा। "मास्टर मारे नही, ने भणावे नही" (मास्टरजी न मारे, न पढावें), ऐसी बात हो जायगी। सर्वोदय-समाज के लिए किसी तरह की सघटना की कल्पना नही है, लेकिन इसका अर्थ यह नही कि हमारा काम बिखरा हुआ होना चाहिए। हम जो काम करना चाहते है, उसके लिए हमारे पास कोई सगठन नही है, ऐसी बात नही है। हमारे पास जो सस्थाए है और जो अलग-अलग काम करती है, उन सबका सगठन हम करने जा रहे है। उसमे से ही सर्व-सेवा-सघ पैदा हो रहा है। वह हमारा कार्य का यत्र होगा और यह जो सर्वोदय-समाज है, वह सहविचार का, सहचिन्तन का, तत्त्व-सकीर्तन का, नाम-जप का साधन हो, ऐसा हम चाहते है। वह यत्र है ही नही। वह अनियत्रित विचार है जो हम विश्व मे फैलाना चाहते है और जिसे सारे विश्व मे फैलाना है, वह सदेह नही हो सकता, विदेह ही हो सकता है। इसलिए देह नही बना रहे है। अगर

हम उसे सदेह बनायगे तो काम जरूर होगा, लेकिन वह विश्व-व्यापी नही होगा। एक तरफ तो काम करने के लिए हम पूर्ण रूप से सुसज्ज, सुसगठित, चुस्त यत्र बनाने जा रहे है और दूसरी तरफ विश्वव्यापी ज्ञान-प्रसार के लिए एक विदेही रचना कर रहे है। हमारी इस रचना के विषय मे जो मानसिक आक्षेप शायद सबके मन में आता है, उसके विषय मे मैंने यह कहा।

अब अनुभव से जो सूझता है और लगता है कि करना चाहिए, ऐसी कुछ बाते आपके सामने रखता हू। इन बातो का पूरा विवरण अपने मन में मैंने नही किया। जैसा सूझा, वैसा आपके सामने रखता हू।

सबसे महत्त्व की चीज यह है जो इस समय बहुतो की अपेक्षा से भिन्न हो सकती है, वह है खादी। जहा जाता हू, वहा स्वागत में हार मिलते है। एक गुजरात छोड कर, जहा कि बहुत सूत मिला, बाकी सब जगह तो फूल की मालाए मिली।

इस पर से आप समझ जायगे कि परिस्थिति कैसी है। मेरी हालत तो उस अधे-जैसी है जिसका वर्णन तुलसीदास ने अपने एक अप्रतिम भजन मे किया है। एक मनुष्य था, जो बारिश के दिनो में, श्रावण के महीने में, अन्धा हुआ। अन्धा होने के पहले उसे सारी सृष्टि हरी-भरी दिखाई देती थी। अब क्योकि वह अन्धा हो गया है, सारी सृष्टि उसके लिए लोप हो गई है तो उसे हरा-ही-हरा रग सूझता है। तुलसीदासजी कहते है कि मेरी दशा उस अन्धे की तरह हो गई है। मुझे परमेश्वर के नाम के सिवा अब कुछ सूझता ही नही है। मेरी हालत वैसी ही है। आश्रम में बरसो रहा तो वहा खादी-ही-खादी देखता था। दूसरी चीज नजर मे नही आती थी। अब बाहर निकला हू तो वहा खादी नही देख रहा हू, इसलिए उसीका ध्यान आता है। आश्रम में खादी ही देखता था तो वह मन पर आरूढ थी। अब यहा उसका अभाव देखता हू तो वही बात चित्त में आती है। दूसरी सारी बातें फीकी लगती है। सम्भव है, यह उस श्रावण के अन्धे-जैसी स्थिति हो। लेकिन मै अपने को

केवल अन्धा नही मानता। हमारे सर्वोदय के विचार मे खादी का जो स्थान है, वह दूसरी किसी चीज को नही है।

काका साहब ने आज सुबह कहा कि आज नही तो कल, हिन्दुस्तान को ही नही बल्कि सारी दुनिया को खादी अपनानी है। काका साहब का यह वाक्य मुझे ऋषि-वचन-जैसा लगा। ऋषि भविष्य की बात देखता है। उन्होने बापू के नाम से यह कहा। बापू का उसमें जो है वह है ही, क्योकि सब उन्हीका है, लेकिन काका साहब का भी दर्शन उसमे पडा है। मै मानता हूं कि न बापू पागल थे, न काका साहब पागल है। इसमे ठीक दृष्टि है।

हमारे दूसरे काम भी अच्छे है और उन्हे करना चाहिए, लेकिन वे हमारी विचारधारा के प्रतिनिधि नही कहे जा सकते, क्योकि उसके खिलाफ कोई विरुद्ध विचार नही खडा है। मिसाल के तौर पर कुष्ठ-रोगियो की सेवा होनी चाहिए। वह नही करनी चाहिए या दूसरे तरीके से वह सवाल हल हो सकता है, ऐसा कहनेवाला कोई विरोधी विचार कुष्ठ सेवा के खिलाफ खडा नही है। ग्राम-सफाई की बात हम आज करते है। वह काम भी जरूर करना चाहिए, लेकिन उसके विरोध मे कोई विचार खडा नही है। सब उसे मजूर करते है। वैसी बात खादी की नही है। खादी के विरोध मे एक विचारधारा खडी है और खद्दर उस विचारधारा के खिलाफ एक बगावत है। सारी दुनिया यन्त्र-विद्या मे विश्वास रखती है। वैज्ञानिक इसे यन्त्र-युग कहते है, पुराने लोग कलियुग कहते है। ऐसी परिस्थिति मे जब हम खद्दर की बात करते है तो समझना चाहिए कि दुनिया में जो विचारधारा आज चल रही है, उसके खिलाफ हमारा यह बगावत का झण्डा है। यो तो हमने अपना राष्ट्रीय झण्डा भी खादी का बनाया है और कुछ दूसरे रूप मे ही क्यो न हो, हमने उसमें चरखे को स्थान दिया है, फिर भी हम उसे भूल-से रहे है। यह ध्यान मे रहे कि हम दूसरी चाहे हजार बाते करे, लेकिन खद्दर मे अगर कामयाब नही होते है तो गाधीजी के विचारो के प्रतिनिधित्व का दावा छोड देते है और हार कबूल करते है। खद्दर मे हार कबूल करें तो दूसरी सेवा भी हम छोड दे, ऐसा नही है। वह तो हम करे ही,

लेकिन वह सारी सेवा हमारे विचारो की दृष्टि से गौण हो जाती है, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नही। मै यह नही कहना चाहता कि खद्दर छोडने पर हम असत्य या हिंसा का आचरण करते है, फिर भी जिस सामाजिक अहिंसा का विचार हम करते है, उस तरह की अहिंसा मे मै खतरा देखता हू अगर हम खादी को अव्यावहारिक मानते है।

मैंने इस सम्बन्ध में वहुत विचार किया है और उस पर से जो नतीजा निकाला है, वह आपके सामने रक्खूगा। यद्यपि मै जानता हू कि यह चरखा-सघ की सभा नही है, लेकिन जो दृष्टि मैंने आपके सामने रक्खी, वह अगर आपको मजूर है तो जो विस्तार मै करूंगा, वह आप मुनासिव समझेंगे और कुछ अप्रासगिक वात हो रही है, ऐसा नही कहेंगे।

---

१. माटी लगाने का काम। हिन्दी में इस क्रिया को 'पाहं' कहते हैं।

मैं इस नतीजे पर आया हू कि हमारे सूत को दुवटना चाहिए जिससे सूत ऐसा मजवूत वनेगा कि हम खुद ही उसे वुन सकेगे। खुद कातते है वैसे ही हम खुद वुन भी लेते है, ऐसा होगा तव यह काम आगे वढेगा। जो लोग खुद नही बुन सकेंगे, वे दाम दे कर वुनवा लेगे। वह उनको सस्ता भी पडेगा। दुवटे सूत को वहुत से लोग तो घर में ही वुन लेंगे। यह एक वात आपके सामने रखना चाहता था। मेरी आपसे अर्ज है कि आप किसी भी काम मे क्यो न पडे हो आपके आस-पास खद्दर का वातावरण होना चाहिए। अगर वैसा वातावरण, नही है तो गाधी-विचार की दृष्टि से आपका सारा काम खास कीमत नही रखता।

दूसरी वात है सर्वोदय-विचार का परिपूर्ण अमल। उसका समग्र अमल कव होगा, यह तो परिस्थिति पर निर्भर है, लेकिन आज सामाजिक क्षेत्र में जो एक चीज हम कर सकते है,वह है छुआछूत का निवारण। वह अव तक हम नही कर पाये है, यह अत्यन्त दु ख और शर्म की वात है। वैसे मैं दो साल तक भगी का काम करता रहा। परमेश्वर ने चाहा होता तो उसीको नियमित रूप से प्रार्थना की तरह करता रहता, लेकिन वह तो देहात का भगी-काम था जो शहर की अपेक्षा वहुत आसान था। शहर का भगी-काम मनुष्य के लायक ही नही होता है। दिल्ली मे भगियो की एक सभा हुई थी, जिसमे श्री जगजीवनरामजी का भाषण हुआ। अपने भाषण मे उन्होने अत्यन्त समत्व वुद्धि से भगियो को आदेश दिया कि "तुमको यह काम छोड़ देना चाहिए। इसके विना तुम्हारा उद्धार नही होगा। यद्यपि मैं किसी काम को नीच नही मानता, फिर भी इस काम को मैं मनुष्य के लायक नही समझता।" इस विचार के समर्थन मे उन्होने जो दलील दी, वह सहज समझ में आने जैसी और वडी माकूल थी। उन्होने कहा कि "आज-कल की तगी के जमाने में हर धधे मे भीड हो रही है, स्पर्द्धा हो रही है। ब्राह्मण चमडे का काम करने लग गए है, लेकिन क्या तुम्हारे धधे मे कभी कोई दाखिल हुआ है? अगर नही, तो समझ लो कि इतनी आपत्ति होते हुए भी जव इस काम में दूसरा कोई नही आ रहा है तो वह काम मनुष्य के करने लायक ही नही है।" फिर

मेरी ओर देख कर उन्होंने पूछा, "क्या मै ठीक कह रहा हू ?" मैंने कहा, "हा, ठीक है।"

अप्पा साहब को आप लोग जानते है। जेल में भी भगी का काम मिले, इसलिए वहा उन्होने सत्याग्रह किया था। लेकिन वह अपना अनुभव मुझे बताते थे कि शहर मे भगी का काम वह करने लगे तो दो-चार दिन में ही हार गए। ऐसा काम हम जिस मनुष्य को देते है, वह उसे अछूत कहकर ही करवा सकते है, क्योकि उसका दूसरे धधो मे प्रवेश नही है। इस गुलामी से तो हमें उन्हे मुक्त करना ही पडेगा। उसके लिए हम सबको भगी बनना चाहिए या उस काम को ऐसा स्वरूप देना चाहिए कि जिससे हर कोई उसे कर सके।

महाराष्ट्र में जलगाव और धूलिया में वहा के हरिजन-सेवक-सघ की ओर से महीने में एक दिन भगी का काम करना शुरू किया गया है।

अप्पा साहब ने मुझसे आज कहा कि इसे सर्वोदय के बदले अन्त्योदय कहे तो अच्छा है, क्योकि हमारे भगी भाई सबसे आखिर के दर्जे के है। वास्तव में सर्वोदय शब्द का मूल अन्त्योदय की कल्पना मे ही है। रस्किन के 'अन्टु दिस लास्ट' के अनुवाद को बापू ने 'सर्वोदय' नाम दिया है। सबसे नीची श्रेणी के जो है, उनका भी, अत्यो का भी, उदय सर्वोदय में है। सारी दुनिया का उदय जब होगा तब होगा, लेकिन भगी का उदय तो होना ही चाहिए। शब्द तो मैं सर्वोदय रखना ही पसन्द करूगा, क्योंकि सर्वोदय में अत्योदय आ जाता है। केवल 'अन्त्योदय' शब्द में भाव यह आता है कि बाकी के लोगो का उदय हो चुका है, लेकिन ऐसा नही है। इस कमबख्त दुनिया में उदय किसी का नही है। सबका अस्त ही है। किसी के घर मे चूल्हा जलता ही नही है तो किसी के घर में रोटिया जल जाती है। दोनो के चूल्हो का अस्त हुआ है और दोनो को खाना नही मिल रहा है। समाज के पैसेदार लोगो के जीवन का परिपूर्ण अस्त कब का ही हो चुका है और जो दरिद्र है, उनका तो अस्त ही है। तुलसीदासजी का एक भजन मुझे यहा याद आता है। उन्होने भगवान से कहा है कि "प्रीति की रीति आप ही

जानते है। आप वडे की वडाई दूर करते है और छोटे की छोटाई दूर करते है। यही आपकी प्रीति की रीति है।" वडो की वडाई कायम रखना उन पर प्रीति करना नही है। धन वालो की वुद्धि जड धनकी सगति से जड और निस्तेज वन जाती है। जो जड वन गए है, उनका और जिनको खाने को नही मिलता है उनका, दोनो का ही उदय होना वाकी है। इसलिए शब्द तो 'सर्वोदय' ही रहे, लेकिन फिक्र अत्योदय की भी रक्खे। यह हुआ दूसरा विचार।

तीसरा विचार है अपरिग्रह का। उसका जिक्र पिछले साल मैने किया था। जैसे भगीपन को मिटाना है, वैसे ही परिग्रह को भी मिटाना है। यह अपरिगह-व्रत से ही हो सकता है। वावूजी (राजेन्द्रप्रसादजी) ने सुवह कहा कि कुछ लोगो का विचार अपरिग्रह का है तो दूसरे कुछ लोगो का अपहरण का। अपरहरणवादी कहते है कि हमारे विचार का कुछ तो प्रयोग एक देश मे हमने करके वताया है। आपका अपरिग्रह-विचार चलेगा, इसमे हमारी श्रद्धा नही है, इसे हम छोड दें। लेकिन हमारे देश की हालत ऐसी है कि अगर हम अपरिग्रहव्रत का अमल न करे तो सघर्प टल नही सकता। मैने अजमेर मे देखा कि मारवाडियो और सिन्धी शरणार्थियो के बीच द्वेष-भावना भरी है। अव वह कम हो रही है, क्योकि सिंधी व्यापारी वहा से हट रहे है। मैने वहा कहा था कि हिंदुस्तान मे कभी हिंदू-मुसलमानो के वीच तो कभी ब्राह्मण-ब्राह्मणेतरो के वीच तो कभी सिन्धियो और मारवाडियो के वीच, झगडे होते ही रहेगे। जवतक हिंदुस्तान की आज की दुर्दशा कायम रहेगी, जवतक अन्न की उत्पत्ति नही वढेगी, द्वेप का यह जहर किसी-न-किसी रूप मे कायम रहेगा। झगडे मिटेंगे नही, हिसा टलेगी नही। मै गणित-प्रेमी रहा, इसलिए गणित की भाषा मे, लेकिन कुछ सख्त शब्दो मे, मैने कहा कि अगर हिंदुस्तान मे थोडा सुख का अनुभव लोग लेना चाहते है तो दस करोड को कत्ल कर देना चाहिए, तभी बची हुई सामग्री मे वाकी के लोगो को आधिभौतिक सुख मिलेगा।

मतलव शरीरश्रम के साथ अपरिगह-व्रत और अपरिगह के साथ शरीर-

श्रम, दोनो एक दूसरे के साथ आते है। एक ही चीज के ये दो पहलू है। गए साल अपरिग्रह की बात हो रही थी। तब यह पूछा गया था कि किसकी कितनी जरूरत है, यह कौन तय करे? तब मैने कहा था कि जिसकी जरूरत हो, वही तय करे। हमारे पास धन नही है, इतने से हम अपरिग्रही नही बन जाते। हमारे पास दूसरा भी परिग्रह पडा है। पैसे नही तो ऐसी पुस्तकें पडी है जिनकी एक बार ही जरूरत पडती है, बाकी हमेशा बन्द ही पडी रहती है। यह एक तरह का परिग्रह ही है। इस तरह हमें अपने जीवन का शोधन करना चाहिए।

परिग्रह का एक दूसरा भी पहलू है। हम यह मान लेते है कि खुद के लिए हम परिग्रह न करें, लेकिन सस्थाओ के लिए कर सकते है। हिसावादी अपने व्यक्ति के लिए हिसा नही करना चाहता, लेकिन समाज और राष्ट्र के लिए हिसा करने में पाप नही समझता। हम सस्था के लिए परिग्रह क्षतव्य मानते है। मै एक और मिसाल दू। चरखा-सघ का पैसा बैक में पडा रहता है, जिसका ब्याज उसे मिलता है। सोचने की बात है कि ब्याज मिलता कहा से है? वह पैसा दूसरे धन्धो में लगाया जाता है, इसलिए ब्याज मिलता है। चरखे के लिए दिया हुआ इयरमार्की पैसा गो-सेवा जैसे अच्छे काम में नही लगाया जा सकता, यह मर्यादा हम मानते है और यह ठीक है, लेकिन बैको द्वारा दूसरे धधो में वह लगाया जा सकता है, लगाया जा रहा है, यह एक महान् आपत्ति है। यह धन-लोभ ही है, चाहे सस्था के नाम से ही क्यो न हो। इसी तरह हमने कस्तूरबा कोष में फड इकट्ठा किया है और अब गाधीजी के स्मारक में किया जा रहा है। पैसे की जरूरत ही क्यो होनी चाहिए? और अगर पैसे की जरूरत है और इकट्ठा किया गया है तो साल-दो-साल में वह खत्म करना चाहिए। पर यह बनता नही और बैक में पैसा रखकर ब्याज लेने की बात चुभती नही, उसमें हम दोष नही देखते। कारण, हम रहते ही ऐसे समाज में है जहा ब्याज न लेना मूर्खता माना जाता है। गीता में 'त्यक्त सर्व परिग्रह' कहा गया है। सब परिग्रह छोडो। अगर हम परोपकार के लिए भी परिग्रह का मोह रखते है तो वे

सारे दोष हमारे काम मे आते है, जो एक सासारिक के काम मे आते है।

चौथी बात है कन्ट्रोल आदि के प्रश्नो की। आजकल सब जगह बहुत तगी है। तकलीफ है। कन्ट्रोल फिर से लगे तब भी तकलीफ है, कन्ट्रोल उठे थे तब भी तकलीफ थी। दोनो बाजू से दोष है। मैने इस मसले पर बहुत विचार किया। इन दिनो में घूमता रहा हू, देखता रहा हू और देखने से मनुष्य को सूझता भी है। मुझे मौका मिला था तो वर्किंग कमेटी की मीटिंग मे और राजघाट की प्रार्थना मे भी मैने कहा कि इसका कुछ हल हो सकता है अगर हम जमीन महसूल अनाज के रूप में लें। कपडे का प्रश्न खद्दर से हल हो सकता है। आपको इस सुझाव की परीक्षा करनी चाहिए। अगर यह ठीक लगे तो अपनी अनुकूल राय जाहिर करनी चाहिए। और ऐसा लगे कि मृगजल है तो इसे छोड देना चाहिए।

सर्वोदय-समाज-सम्मेलन,
राऊ (इंदौर) ७ मार्च १९४९

: ७ :

सर्वोदय का स्वरूप

जब मुझे बताया गया कि आप लोग सर्वोदय के बारे में जानना चाहते हैं, तो मैंने सोचा कि आपसे जरूर मिलना चाहिए और बातें करनी चाहिए, क्योंकि सर्वोदय की दृष्टि के बिना हम ठीक सेवा कर ही नही सकते। सर्वोदय की दृष्टि के बिना की गई सेवा या तो किसी एक पक्ष की होगी या खुद की होगी—सच्ची सेवा नही होगी, इसलिए सेवा की दृष्टि समझ लेना जरूरी है।

गाधीजी की मृत्यु के बाद सेवाग्राम में सभा हुई थी। वहा भविष्य के काम के बारे में विचार-विनिमय हुआ। हमने सोचा कि क्या कोई नई सस्था उनके पीछे शुरु की जाय? क्या गाधी-सघ चलाया जाय? परन्तु यह कल्पना किसी को पसन्द नही आई। हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से व्यक्ति-वाद को स्थान नही है। पश्चिम में यह बहुत चलता है। कोई वैज्ञानिक आसमान मे किसी एक नए सितारे को ढूढ लेता है तो उस वैज्ञानिक का ही नाम उस सितारे को दिया जाता है। हिंदुस्तान की सस्कृति में यह बात नही है। वे केवल विचार को महत्व देते है। सस्कृत साहित्य पर आक्षेप है कि इसमें अच्छा इतिहास नही है। आक्षेप सही है, क्योकि जो लोग शाकर-भाष्य जैसा महान् भाष्य लिख सकते थे और योग सूत्र जैसे सूत्र निर्माण कर सकते थे, क्या वे इतिहास नही लिख सकते थे? लेकिन उन्होंने इसलिए नही लिखा कि वे व्यक्ति को नही, बल्कि विचार को महत्व देते थे। तो हमने भी सेवाग्राम की उस सभा में सोचा कि हमारी सस्था को किसी मनुष्य का नाम देना ठीक नही होगा। इसलिए 'गाधी-सघ' जैसे नामो के बदले 'सर्वोदय-समाज' नाम रखा गया।

संस्था के नाम के संबंध में एक और बात है। नाम सर्वोदय संघ नही सर्वोदय समाज रखा गया है। अगर संघ नाम रखा जाता तो एक छोटी सी संस्था बन जाती। उसमे फिर कोई लिया जाता, कोई न भी लिया जाता. उसके कानून बनते, अनुशासन होता और अनुशासन भंग की कार्रवाइयां होती। संघ तो एक ऐसी संस्था है, जिसमें खास मनुष्यो को ही अवसर मिलता है। उसमे वह व्यापकता और स्वतन्त्रता नही होती जो मनुष्य के विकास के लिए जरूरी होती है।

सर्वोदय यानी सबका उदय, यानी किसी का उदय और किसी का अस्त, ऐसा नही। 'सर्वोदय' शब्द बहुत अच्छा है और गांधीजी का ही वह बनाया हुआ है। 'सर्वभूतहिते रता' की कल्पना उसमे है। बाइबिल मे भी वैसा विचार आता है। रस्किन ने उसीका आधार लेकर अपनी 'अन्टु दिस लास्ट' वाली किताब लिखी है। मतलब उसका यह है कि पहली श्रेणीवाले की जैसी रक्षा की जाती है, वैसी उसकी भी होनी चाहिए जो आखिरवाला है। जैसे परमेश्वर के यहा हाथी को मन तो चीटी को भी कन मिलता ही है। वैसी समानता की दृष्टि सेवक की होनी चाहिए।

इस तरह एक विचार सबके सामने हमने रख दिया और फिर निष्ठा भी बता दी कि हमे वर्गहीन समाज कायम करना है, जो सत्य और अहिंसा के आश्रय से ही हो सकता है। इस तरह प्रतिज्ञा-बद्ध होने पर एक कार्यक्रम भी बनाया—खद्दर, नई तालीम, कुदरती इलाज, स्त्रियो की सेवा इत्यादि बाते बता दी और बाकी का सब लोगो पर छोड दिया।

सर्वोदय-समाज का सेवक क्या करता है, क्या नही करता है, यह खुद वही जानता है। मैं या समाज उसके काजी नही है। वह आजाद है। वह चाहे अकेला काम करे, चाहे संस्था बनाकर करे। उम्र की भी कैद नही रखी गई है। एक भाई ने मुझसे सवाल पूछा कि 'क्या आठ साल के बच्चे को भी आप सर्वोदय-समाज मे लेगे?' मैने कहा, 'मैं कौन लेने वाला? और जब भगवान ने ही उसे ले लिया है तो मै कौन इन्कार करनेवाला? क्या मर्दुमशुमारी मे छोटे बच्चो का शुमार नही होता? छोटे बच्चे कितना

काम करते है। अगर कोई बच्चा यह कहे कि मैं अपनी गली को साफ रखता हू, या खेल में भी असत्य का उपयोग नही करता, तो उस बच्चे ने सर्वोदय समाज का बहुत काम किया।" एक भाई ने पूछा था, "क्या सर्वोदय समाज का सेवक सिपाही के नाते लडाई में शरीक हो सकता है ?" दूसरे एक साथी ने पूछा—"क्या शराबी भी सर्वोदय समाजी हो सकता है ?" मेरा जवाब है कि अगर कोई शराबी भी है और सच्चे दिल से कोशिश कर रहा है, तो वह भी सर्वोदय समाज का सेवक हो सकता है और उसकी कोशिश कैसी है उसका फैसला वही करनेवाला है—मैं नही।

कुछ लोग पूछते है, 'बिना सघटन के काम में प्राण कैसे निर्माण होगा ?' सवाल ठीक है, लेकिन उसमें मोह पडा है। एक ईसाई भाई मुझसे सेवा के बारे में मार्ग-दर्शन चाहता था। मैंने छोटी-मोटी कुछ सूचनाए तो दी, लेकिन एक खास सूचना यह दी कि 'डोन्ट ऑर्गनाइज'—सघटन मत बनाओ। उसने बताया कि सेट फ्रासिस भी यही कहता था।

आजकल जो उठता है, वह अपना अखिल भारतीय सघटन करना चाहता है। हमारे वर्धा में मातग (माग) जाति की अखिल भारतीय परिषद् हुई। वैसे वह जात केवल महाराष्ट्र में ही है, और उस सभा में तो वर्धा के इर्द-गिर्द के ही लोग इकट्ठा हुए थे। लेकिन उसको उन्होने अखिल भारतीय कहा। मैंने कहा, अखिल विश्व क्यो नही कहते ? लेकिन आजकल जो काम शुरू होता है, अखिल भारतीय नाम से शुरू होता है, फिर उसकी दस-पाच प्रातीय शाखाए होती है। फिर दस की सौ शाखाए जिलो की होती है। लेकिन पत्थर के कितने भी टुकडे किये जाय तो भी उसमे से आटा थोडे ही मिलनेवाला है ? उन दफ्तरो मे झाडू कौन लगावेगा ? जहा शाखाए खोलने का सघटन चलता है, वहा सेवा का कही काम ही नही हो पाता। यह पद्धति ही गलत है।

सर्वोदय-समाज की स्थापना करनी हो तो क्या करना चाहिए ? मुझमें अगर द्वेष है, मत्सर है, तो उसे दूर कर देना चाहिए। जिसके प्रति

मत्सर हो, उसके पास जाकर दोस्ती कर लेनी चाहिए। इस तरह सर्वोदय-समाज का काम व्यक्तिगत तौर पर शुरू हो जाता है। फिर आहिस्ते-आहिस्ते दो-चार मित्र तैयार हो जाते है और धीरे-धीरे गाव हो जाता है। फिर दो चार गाव मिल कर काम कर सकते है। धीरे-धीरे सारा विश्व और सारा ब्रह्माड भी सघटित हो सकता है। लेकिन यह सघटन नीचे से, भीतर से और स्वाभाविक रूप से हुआ समझा जायगा। हमे समाज की ऐसी स्थिति कायम करनी है कि जिससे उसकी अत शुद्धि हो सके। जगह-जगह रत्न पडे हो तो उन्हे सूत्र में वाधा जा सकता है। लेकिन माला के लिए पहले रत्न का होना जरूरी है, सूत्र का नही। इसलिए अभी फिक्र इस वात की है कि जगह-जगह सर्वोदय-समाज के लोग निर्माण होने चाहिए।

अगर केवल विचार देने के वजाय हम सघटन करने वैठेगे तो हमारे सघटन मे जो शरीक होगे वे ही हमारे रहेगे। मुझे ऐसा नही चाहिए। जो खद्दर पहनता है वह, और जो नही पहनता है वह, जो शराव पीता है वह, और जो शराव नही पीता है वह, ये सव मेरे और मै उनका। उनके साथ में एकरूप होना चाहता हू। सघटन से यह सभव नही। मैने यह अपने जेल के अनुभव से पाया है। नर्मदा और गगा के सभी पत्थर समान होते है। नर्मदा के पत्थर को भले हम शकर कहे, लेकिन कहने भर से कुछ नही होता। मैने जव यह महसूस किया तो वाहर आने पर निश्चय किया कि मै किसी सस्था का सदस्य नही रहूगा। उससे मैने एक अद्भुत ताकत का अनुभव अपने भीतर किया। सस्था मे रहता तो मै किसी कोने मे पडा रहता। भले ही वह आश्रम ही क्यो न हो। आज मै अपने को दुनिया के मध्य मे पाता हू।

इसका यह अर्थ नही है कि सस्था वनानी ही नही चाहिए। जरूरत पडने पर सर्वोदय-समाज के लोग छोटी-सी सस्था वना सकते है। लेकिन ऐसी सस्था सघटन नही, वल्कि एक व्यवस्था भर होगी, जैसे किसी परिवार मे होती है। तो वैसी सस्था मे चार-छ. कार्यकर्त्ता साथ रह कर काम कर

सकते है। आपस मे मिल कर काम करने के लिए किसी एक तत्व की जरूरत होती है। और वह तत्व है, सत्य और अहिंसा।

यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन,
दिल्ली, १ फरवरी, १९४९

: ८ :

सर्वोदय की बुनियाद—सत्यनिष्ठा

आप लोग जानते हैं कि सर्वोदय-समाज की कल्पना आजकल निकली है। लोग मुझसे पूछते हैं कि "इस समाज की सघटना आप किस प्रकार करने जा रहे हैं ?" मै जवाब देता हू कि देश मे आज कई सस्थाए हैं। उनमे और एक सस्था खडी कर के मुझे वृद्धि नही करनी है। जीवन को दिशा देनेवाला एक विचार अपने खुद के जीवन में दाखिल करना है और दूसरे भाई-बहनो को वह समझाना, इतनी ही कल्पना है। वह विचार अगर एक-एक व्यक्ति के जीवन मे दाखिल हो जायगा तो आग के जैसा अपने आप फैल जायगा। उसके बदले यदि सस्था खडी की जाय तो उसमे स्पर्धा, अभिनिवेश आदि दोष आने की सभावना रहती है। मै उससे बचना चाहता हू। समाज अच्छी तरह सगठित होना चाहिए। कुटुम्ब में समाज-निष्ठा से जुडा हुआ समाज रहता है, वैसा समाज चाहिए। लेकिन कुटुम्ब में उस कुटुम्ब को ही देखने की वृत्ति रहती है, इसलिए सकुचितता आती है। उस दोष को छोड़ कर मेरा दृष्टात लीजिए, तब मेरी कल्पना आप समझ सकेगे।

पार्थिक बधनो के कारण जब लोग एक जगह आते हैं तब उनकी कल्याण करने की शक्ति कुठित होती है, ऐसा मै मानता हू। जब वे सहज भाव से एकत्र होते हैं, स्थूल सबध को गौण स्थान देते हैं, मत (राय) की अपेक्षा मनुष्य को ज्यादा महत्त्व देते हैं, मनुष्य को मनुष्य के तौर पर पहचानते है, तब कल्याण करने की शक्ति बढती है। मैने ऐसी कई सस्थाएं देखी हैं, जिनका आरभ उत्तम हेतु से हुआ, लेकिन उनके कार्यो मे से ही सस्था मे

दोष उत्पन्न होने लगे। फिर उन दोषो का वचाव किया जाता है। वे दोष गुप्त भी रखे जाते है। फिर वृत्ति वदल जाती है और टुकडे होने लगते है। मुझे टुकडे नही चाहिए। अखड आनद का अनुभव मुझे लेना है और वह भी केवल मानसिक नही, क्योकि वह मै ले ही रहा हू, प्रत्यक्ष क्रियात्मक। इसलिए कोई किसी भी धर्म का या पथ का हो, मै हरेक को मनुष्यके नाते देखना चाहता हू। वह भी मुझे वैसा ही देखे, तभी कल्याणकारी सेवा होगी। विश्व-कल्याणकारी सेवा मनुष्य के हाथ से हो, यही मेरी इच्छा है।

सर्वोदय-समाज की कल्पना क्या है? सवमें मै हू और मेरे में सव है। इसलिए मै मेरे निजी जीवन में, व्यापार आदि में, सामाजिक जीवन में और हर जगह असत्य का व्यवहार नही कर सकता। क्योकि सव जगह अगर मैं हू तो असत्य कैसे शोभा देगा? कैसे छिपाऊ और किससे छिपाऊ? जिससे छिपाना है, वह भी मै ही हू न?

यह महान् सत्यनिष्ठा सर्वोदय की वुनियाद है। कुछ लोग कहते हैं कि इस निष्ठा से सर्वोदय-समाज में अधिक लोग नही आयगे। मै कहता हू कि ऐसा कहनेवाला भगवान् की जगह लेना चाहता है। मै वह जगह नही ले सकता। सव मानवो में शुभ प्रेरण क्यो पैदा नही होगी? होगी ही, ऐसी मै आशा रखूगा। लेकिन मान लीजिए कि वैसी प्रेरणा किसीको भी नही हुई और सर्वोदय-समाज हवा में ही रह गया, तव भी यह अव्यक्तकल्पना विश्व-कल्याण करेगी। इसके विपरीत सत्यनिष्ठा-विहीन वहुत वडी सख्या किसी समाज में शामिल हुई तो भी विश्व-कल्याण की दृष्टि से उसका तनिक भी उपयोग नही होगा।

गाधी-तत्त्वज्ञान-मदिर,
धूलिय, ४ जनवरी, १९४९

: ९ :

सर्वोदय-समाज—एकमात्र तारक शक्ति

अभी मै सर्वोदय-प्रदर्शिनी के लिए जयपुर आया था। यहा से वापस लौटते समय यहा आज रुक गया था, यहा की प्रार्थना मे सम्मिलित होने के के लिए। हमने यहा बहुत दफा एकत्र प्रार्थना की है। बीच मे दो माह यहा मै नही आ सका था। आज मुझे फिर से आपके साथ प्रार्थना करने का मौका मिला है।

अभी दुनिया की स्थिति बहुत सोचने के काबिल है। जिधर देखो उधर अशान्ति और झगडे चल रहे है। यहूदियो और अरबो का झगडा जैसा था, वैसा ही जारी है। चीन मे यादवी युद्ध शिखर तक पहुच गया है। डच लोगो ने नये सिरे से वहा के स्वातत्र्यवादियो पर हमला किया है। इतने सब नये-नये झगडे उठने के साथ पुराने झगडो के स्मरण भी ताजे किये जा रहे है। अपने प्रतिपक्षी को युद्ध के गुनहगार समझकर फासी पर चढाने का नाटक जापान मे हो रहा है, मानो युद्ध के गुनहगार ये जापानवाले ही थे और उनको फासी पर चढानेवाले ये सब शाति के दूत ही है, या उन्हे फासी पर चढाने से दुनिया मे शाति स्थापित होनेवाली है।

यहा हिंदुस्तान मे भी काश्मीर के मामले मे हिंसा का आश्रय लेना पडा है। उसमे किसका कितना दोष है, यह दूसरी बात है, पर अहिंसा से काश्मीर का मामला तय नही हो सका, यह दु ख की बात है।

वैसे हिंदुस्तान मे इस वक्त राजकीय एकता तो बढ रही-सी दिखती है। यहा छोटे-छोटे राज्य मिटकर विशाल समूह बन रहे है। लेकिन राजकीय एकता से भी बढकर जो मानसिक एकता है, वह उतनी नही दीख रही है।

मै बहुत मिसालें नही दूगा। हमने मध्यभारत का एक प्रात तो बना लिया है, लेकिन वहा इदौर-वाद और ग्वालियर-वाद चल रहा है। हैदराबाद का मामला कुछ हल होने पर है तो वहा भी काग्रेस में दो पक्ष हो गए है।

इस तरह से भेद-बुद्धि जोर कर रही है। विद्यार्थियो को अपने-अपने जाल में पकडने के लिए तरह-तरह की युक्तिया काम कर रही हैं, मानो विद्यार्थी कोई मछलिया ही है। मजदूरो के मामले में भी भेद-बुद्धि बढ रही है और मामला सुलझने के बजाय उलझ ही रहा है। भाषा वार प्रात-रचना का सवाल एक सीधा-सादा सवाल था, पर उसको भी हम सुलझा सके है ? किसी को यह नही सूझता कि सामनेवाला जो कहता है। वह मजूर कर लिया जाय। इस भाषा के दो-चार लाख लोग उस भाषा के प्रात में रह गए तो उससे क्या हानि होनेवाली है ? जब कि हमने सारी सत्ता केन्द्र को सौप दी है तो सामान्य सीमा, जो दूसरे को मान्य हो, कबूल करने में कौन-सा नुकसान है ? लेकिन वह नही हो रहा है। आग्रह के कारण मामला सुलझता नही है और फिर कमीशन और कमिटिया बिठानेकी नौबत आती है। हिंदी-हिंदुस्तानी का झगडा केवल नाम पर हो रहा है। रूप का तो उसमें कोई खास सवाल ही नही है। पर कोई यह नही सोचता कि आखिर राष्ट्रभाषा किसलिए है ? इसीलिए न कि देश में एकता कायम हो ? फिर जो चीज हमने एकता के लिए निकाली है, उसीमे झगडा क्यो ? लेकिन आग्रह नही छूटता। यह समझ में नही आता कि आग्रह की शक्ति भी मर्यादित होती है, और जब छोटी चीजो में वह खर्च हो जाती है तो बडी चीजो के लिए फिर बच नही पाती। ईसामसीह का एक वचन मुझे इस समय याद आ रहा है और कल ही क्रिसमस का दिन है, इस लिहाज से भी वह वचन चिंतनीय है। "ऐग्री विद दाइन ऐडवरसरी क्विक्ली"—अपने विरोधी की बात फौरन मानो।

लेकिन दुनिया मे यह अभी नही हो रहा है। यह सारा बयान मै इसलिए नही कर रहा हू कि आपके चित्त पर निराशा अकित करू। मै निराशावादी नही हू, क्योकि मै जानता हू कि मानव का आत्मा परम शात और भेदरहित

है। और यह जो अशाति और भेद का आभास हो रहा है, वह उसकी परम शाति मे नगण्य है। फिर भी स्वच्छ कपडे पर जरा-सा धब्बा भी ध्यान खीच लेता है। जब जागतिक युद्ध चल रहा था तब भी मै निराश नही था। मै तो यही मानता था और मानता हू कि जागतिक महायुद्ध ईश्वरी होते है और कुछ सजा देकर ही क्यो न हो, पर होते है मानव की उन्नति के लिए ही। मै यह भी जानता हू कि ऐसे महायुद्ध भी प्रशात आत्मा के एक कोनेमे चला करते है, आज दीख पडते है, चद रोज बाद खतम हो जाते है।

लेकिन आज जो मैने बहुत-सी चीजे वर्णन की है वे चितन के लिए है न कि निराश होने के लिए। जब मै चितन करता हू तो इस सबका हल मुझे सर्वोदय-समाज की कल्पना मे दीख पडता है। लोग मुझे पूछते है, "सर्वोदय-समाज की सघटना किस प्रकार की है ?" मै कहता हू, वह कोई सघटना नही है, वह एक क्रातिकारी शब्द है। उस पर हम सोचे और अमल करें तो मार्ग मिल जायगा।

पश्चिम के लोगो ने जो ध्येय हमारे सामने रक्खा है, अधिक-से-अधिक लोगो के अधिक-से-अधिक सुख का, उसमे बहुसख्यको और अल्पसख्यको के झगडो का बीज है। लेकिन सर्वोदय की दृष्टि, जैसे कि गीता ने कहा है, सर्व-भूतहित मे रत होने की है। उसके लिए हम सबको सत्य, अहिसा की निष्ठा बढानी है। अपने निजी और सामाजिक जीवन मे तथा व्यापार-उद्योग आदि मे कभी असत्य का उपयोग नही करना है, जहा तक हो सके, हिसा का प्रवेश न हो, ऐसी कोशिश करनी है और समाज के उत्थान के लिए जो विविध रचनात्मक कार्यक्रम बताया गया है, उसमे से जिससे जितना बन सके करना है, व्यक्तिगत तौर पर, मित्रो को साथ लेकर और जरूरत पडने पर स्थानिक सस्था बना कर। उसके पीछे जो महान्‌दृष्टि है, उसका विचार करना है और उसीका उच्चार याने जप भी करते रहना है।

अगर हम नवयुवको का और सबका ध्यान इस महान् विचार की तरफ खीच सकें तो मै मानता हू कि दुनिया की बहुत सारी समस्याओ का

हल इसीमें से निकल सकता है। नही तो केवल राजकीय तरीको से, जो आजकल दुनिया-भर में आजमाये जा रहे है, कुछ होनेवाला नही है।

राजघाट, दिल्ली
२४ दिसंबर, १९४९

सर्वोदय—एक क्रान्तिकारी कल्पना

हिन्दुस्तान के समुद्र मे यह प्रदर्शिनी एक विन्दु मात्र है। लेकिन वह अमृत-विंदु है और ग्रामीण जनता के लिए जीवनदायी है। मेरे लिए तो काग्रेस से यही एक आशा है । इसके पीछे अनेक कार्यकर्त्ताओ का परिश्रम रहा है। हिंदुस्तान के हर हिस्से से रचनात्मक काम करने वाले ५००भाइयों ने आकर यहा काम किया है और अपनी बुद्धि तथा भक्ति लगाकर इस प्रदर्शिनी को रचा है।

छ महीने पहले का जिक्र है। वर्धा में एक सभा हुई थी जिसमे वहा की सव सस्थाओ के लोग इकट्ठे हुए थे । वहा चर्चा निकली कि देहात का काम इन सस्थाओ द्वारा तो हम चलाते है लेकिन साथ-साथ देहातो मे घूमने का सिलसिला भी जारी रखना चाहिए। हममे से कुछ लोगो को उसमे लग जाना चाहिए। लेकिन अभी तक वह नही वन सका। क्योकि सारे लोग अपने-अपने काम मे ऐसे गिरफ्तार थे कि उससे मुक्त नही हो पाए। लेकिन वे ही लोग काफी सख्या मे यहा आकर काम कर रहे है। वर्धा से ही करीव सौ लोग आए है। वहा के काम से अपने को फाड कर ही वे आए है । इस पर से आप समझ सकते है कि उन्होने इस काम को कितना महत्त्व दिया। मै उम्मीद करूगा कि प्रेक्षकगण उनके परिश्रम को सफल करेंगे। वारीकी से इस प्रदर्शिनी का अध्ययन करेंगे और अपने जीवन मे उसका उपयोग करेंगे ।

लेकिन यहा आक्षेपक पूछ सकता है कि उम्मीद रखना एक वात है और सयुक्तिक अपेक्षा रखना दूसरी वात है। दो चार रोज मे लाखो लोग

जहा आयगे और जहा उनकी नजरो से वहुत-सी चीजें सिर्फ गुजरेंगी वहा अध्ययन की अपेक्षा कोई कैसे कर सकता है ? मै मानता हू कि इस आक्षेप में वजूद है। यद्यपि लाखो की नजरो से चीजो का गुजरना भी एक काम की वात है। फिर भी परिश्रम के हिसाव से निष्पति कम होगी यह तो मानना ही होगा। लेकिन प्रदर्शिनी में काम करनेवालो ने कर्तव्य-वुद्धि से उत्साह-पूर्वक काम किया है। मै तो गणिती रहा, इसलिए शक्ति-सचय के खयाल से मैंने आजतक ऐसे प्रदर्शनो में वहुत हिस्सा नही लिया है। इस मरतवा आग्रहवश आ गया हू, लेकिन एक दूसरी चीज है जो यहा मुझे खीच लाई है। वह आपका रक्खा हुआ इस प्रदर्शनी का 'सर्वोदय' नाम है। आप जानते है कि गाधीजी के निर्वाण के वाद सर्वोदय-समाज की कल्पना लोगो में फैल गई है। जहा जाता हू लोग पूछते है कि यह सर्वोदय-समाज क्या है ? उसकी सघटना कैसी है ? मै उनको समझाता हू कि वह सघटना नही है। वह एक महान् क्रातिकारी शब्द है। महान् शब्दो में जो शक्ति भरी रहती है वह किसी सघटना में नही रहती। शब्द तारक होते है और शब्द मारक होते है। शब्दो से उत्थान होता है और शब्दो से पतन होता है। ऐसे एक महान् शब्द का हमने उपयोग किया है। वह शब्द क्या कहता है ? हमें चद लोगो का उदय नही करना है, अधिक लोगो का उदय भी नही करना है, अधिक से अधिक लोगो के उदय से भी हमें सतोष नही है, सवके उदय से ही हमें समाधान है। छोटे-वडे, दुर्वल-सवल, वुद्धिमान, जड, सवका उदय होगा तभी हमे चैन लेना है। ऐसा विशाल भाव यह शब्द हमें देता है।

इस दृष्टि से इस प्रदर्शिनी को देखेंगे तो यहा वहुत चीजे सीखने को मिलेंगी। यहा खादी-विभाग में ऐसे छोटे-छोटे औजार है कि जिनसे कपास से लेकर कपडा वुनने तक का काम किया जा सकता है, तात का भी उपयोग करने की उसमें जरूरत नही पडेगी। नई तालीम का विभाग देखने से पता चलेगा कि वच्चे वेकार नही, वल्कि देश के समर्थ सेवक वनते है। यहा कई ग्राम-उद्योग देखने को मिलेंगे जो कि आसानी से हर देहात में किये जा सकते है। देहात के लिए उपयोगी पाखानो के अनेक नमूने रखे गए है

जिनसे गाव की आरोग्य-रक्षा के साथ-साथ ग्रामीणो की सस्कारिता बढेगी और देश की उपज भी।

लोग पूछते है—यह तो वडे पैमाने मे, महत् परिणाम मे, काम करने का जमाना है, इसमे आपके छोटे औजार क्या काम देगे ? मै कहता हू, मुझे महत् नही, महत्तर नही, महत्तम परिमाण चाहिए। लेकिन महत् परिमाण किसे कहे, यह सोचने की बात है। मै तो कहता हू, इन छोटे औजारो से ही महत्तम परिमाण मे काम होता है। क्योकि उनमे करोडो के हाथ लग सकते है। मिलो मे बहुत हुआ तो दस-बीस लाख हाथो से काम होगा और उतने ही उदरो को पोषण मिलेगा, लेकिन जिन औजारो मे करोडो के हाथ लग सकते है और जिनसे करोडो को पोषण मिलता है, उसे छोटे परिमाण का कहेगे या बडे परिमाण का ? सत तुकाराम ने कहा है, "मेरा धन धान्य इतना थोडा नही है कि किसी बैंक मे या कोठार मे समा सके। वह तो हर घर मे रखा हुआ है, इतना महान् वैभव मेरा है" अपने छोटे-से बैंक या ट्रक मे भरे हुए धन को जो बडा मानता है उसका दिल छोटा है। जिसका धन हर घर में सचित है वह विचार मे महान् और सपत्ति मे श्रीमान् है। वारिश की बूद की तुलना हौज मे भरे पानी से कर के जो इस बूद को छोटा मानता है, वह ठीक ढग से विचार करना नही जानता। वारिश की बूद छोटी होती है, पर हर जगह गिर कर व्यापक जल-दान करती है, इसलिए वह छोटी नही है। यही ग्रामोद्योगो की क्रान्तिकारी दृष्टि इसमे है, जो अत्यन्त व्यापक पैमाने पर काम कैसे करना यह सिखाती है।

शुरू कर दिया है। नई तपस्या करने की नही सोचते है। पुरानी तपस्या को बेचकर खाना चाहते है। भोग-लालसा बढ रही है, मत्सर वुद्धि का जोर है और सत्य का कोई खास खयाल नही किया जा रहा है। मैं किसी को दूषण देने की दृष्टि से नही बोल रहा हू। मै अपने को काग्रेस का एक अदना सेवक मानता हू। मैंने अपना स्थान तो काग्रेस मे कही नही रक्खा है, लेकिन जब कभी कागेस ने मदद लेनी चाही, मैंने सेवा दी, इसलिए यह बयान मैं दुख के साथ कर रहा हू। हम लोग यहा आए है तो हममे यह हिम्मत होनी चाहिए कि काग्रेस पर हम अपना रग चढायेगे। वैसे तो सारे देश को हमें आत्मसात् करना है। काग्रेस में ही नही, और भी जहा कही हमें प्रवेश मिलेगा हमें जाना चाहिए और अपने विचार और आचार लोगो के सामने रखने चाहिए। लोगो को लेना होगा, उतना वे लेगे। नारद जैसे देवो में पहुचता था, दानवो मे जाता था, और मानवो मे घूमता था, वैसे हर जमात मे और हर जगह जहा हमें मौका मिलेगा, जाने की हम हिम्मत रक्खेगे तो उसमें हमारा भला है और देश का भी। हम किसी सस्था के आश्रित नही रहना चाहते वैसे ही न हमें सत्ता की तरफ देखना है। किसी भी क्रांतिकारी विचार का प्रचार सत्ता के जरिये नही हुआ है। बहुत हुआ तो सत्ता लोगो को कुछ सुख पहुचा सकती है, उससे अधिक आशा सत्ता मे नही करनी चाहिए। हमारे देश में बुद्ध भगवान् ने क्रान्तिकारी विचार लोगो को दिए थे, लेकिन उनमें उनको राज्यसत्ता का उपयोग नहीं बल्कि त्याग करना पड़ा था। गांधीजी ने भी विचारो के प्रचार के लिए राज्य नही चाहा था, उन्होंने तो स्वराज्य चाहा था। स्वराज्य यानी जहा हरेक अपना राजा हो जाता है, अर्थात् जहा राज्य-सत्ता क्षीण हो जाती है, सत्ता के लिए कोई अवकाश ही नही रह जाता। वह स्वराज्य तो हमे हासिल करना बाकी है। इसलिए सत्ता मे निरपेक्ष और आत्मनिष्ठ बनकर हमें काम करना सीखना चाहिए।

मै तो इन प्रदर्शिनी का एक दूसरी ही दृष्टि से लाभ देखता हू। यहा करीब ५०० कार्यकर्ता महीनो से काम कर रहे है, उनको यहा एकत्र काम

करने का मौका मिला है। वे अपनी-अपनी संस्थाओ मे अलग-अलग प्रकार का काम किया करते थे। उनको यहा समग्र दृष्टि से काम करने का शिक्षण मिला है, परस्पर सहकार का पाठ मिला है—उसके परिणामस्वरूप अगर वे प्रेम का परिपोष करेगे, अहिंसा और सत्य की निष्ठा बढायेगे, तेजस्वी, बुद्धिमान और आत्मनिष्ठ होगे तो इस प्रदर्शिनी का अधिक-से-अधिक लाभ हुआ, ऐसा मै मानूगा।

सर्वोदय प्रदर्शिनी, गांधीनगर,
(जयपुर) १४ दिसंबर, १९४८

११

सर्वोदय का त्रिविध स्वरूप

१

हम जहा बैठे है, वह गाधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर की जगह कही जाती है। महादेवभाई की मृत्यु के बाद उनका कुछ स्मारक हो, ऐसी प्रेरणा धूलिया के लोगो को हुई। हम सब उस समय जेल में थे। जो बाहर रह गये थे, उनकी भावना जेल में गये हुए लोगो की भावना से अधिक तीव्र थी और स्वकर्त्तव्य के बारे में उनकी व्याकुलता अधिक थी, ऐसा मुझे लगता है। महादेवभाई की मृत्यु जेल में हुई। इस घटना का सारे हिन्दुस्तान पर गहरा असर पडा। धूलिया के लोग पहले से ही सत्याग्रह-आन्दोलन के साथ विशेष सहानुभूति रखनेवाले है, इसलिए उस मृत्यु के निमित्त से कोई स्मारक बनाने की इच्छा उनको हुई। लेकिन महादेवभाई का जीवन तो गाधीजी के जीवन में विलीन हो गया था। इसलिए महादेवभाई का स्मारक यानी गाधीजी के विचारो का स्मारक, ऐसी स्थिति थी। अन्त मे गाधी तत्त्वज्ञान-मन्दिर के नाम से यह स्मारक बनाया गया। इसमे नाम गाधीजी का रहेगा और उसमें महादेव भाई का स्मरण अपने-आप हो जायगा।

तुलसीदासजी ने रामायण में लक्ष्मण का वर्णन किया है। हम "झण्डा ऊचा रहे हमारा" यह झडा गीत गाते है। यही उपमा तुलसीदासजी ने ली है। वे कहते है—"प्रभु रामचन्द्रजी के सुयश की पताका, उनकी कीर्ति का झण्डा जो इतना ऊचा लहराया सो इसलिए कि लक्ष्मण के ऊचे डडे का उसको आधार था। "दण्ड समान भयहु जस जाका"। हम "झण्डा ऊचा रहे" कहते है, "डडा ऊचा रहे" नही कहते। लेकिन अगर डडा ऊचा

न रहा तो झण्डा कैसे रहेगा? यह डडे की खूबी है कि वह सीधा खडा रह कर झडे को ऊचा रखता है। लेकिन उसका नाम कोई नही लेता। तुलसी-दासजी-जैसा कोई मनोज्ञ और रसिक मनुष्य ही उसकी याद रखता है। रामचन्द्रजी के यश मे अपना यश लुप्त हो जाय, इसीमें लक्ष्मण को धन्यता मालूम होती थी। उसका यश अगर रामचन्द्रजी के यश से भिन्न रहता तो वैसी धन्यता उसको महसूस न होती। यही हालत गाधीजी के विपय मे महादेवभाई की थी। ज्ञानदेव का भी वचन है—"माझी उरो नेदी कीर्ति। माझें नाम-रूप लोपो" (मेरी कीर्ति न रहे—मेरा नाम रूप मिट जाय)। महादेवभाई की यही वासना थी। इसलिए महादेवभाई का स्मारक बनाते समय उनके ही नाम को प्रधानता देने की बुद्धि यहा के लोगो को नही हुई, और गाधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर के नाम से इस स्मारक की स्थापना हुई। उसीकी छाया मे बैठ कर अपनी यह प्रार्थना हो रही है।

ऐसा यह मन्दिर जिन्होने बनाया, उन धूलियावालो ने एक बडी जिम्मेदारी उठाई है। उसकी पहचान करा देने का आज थोडा प्रयत्न करूगा।

इसको गाधी-तत्त्वज्ञान नाम दिया है, इसलिए गाधीजी के तत्त्वज्ञान का अध्ययन यहा हो, ऐसी अपेक्षा रहना स्वाभाविक ही है। जिस समय इस मन्दिर की कल्पना निकली, उस समय गाधीजी हमारे बीच मे थे। अभी तक यह मन्दिर पूरा नही बना है, लेकिन चन्द रोज मे बन जायगा। बीच के समय मे गाधीजी चले गये है और अब उनका सपूर्ण जीवन हमारे सामने है। किसी मनुष्य के जीवन का और उसके विचारो का मूल्य-मापन, और उसमे ग्रहण करने लायक क्या है, इसका सही निर्णय उस मनुष्य के जिन्दा रहते हुए नही हो सकता। लेकिन अब गाधीजी का जीवन समाप्त हो गया है। और जिस रीति से वह समाप्त हुआ, उस रीति ने भी उनके जीवन पर अप्रतिम भाष्य लिख दिया है। शात चित्त और भगवान् की प्रार्थना की तैयारी मे थे तब वह गये और अन्त मे दो अक्षरो के शब्द का—"राम" नाम का—उच्चार कर के गये।

एक पुरानी कहानी है। वाल्मीकि ने शतकोटि रामायण लिखा था। तीनो लोक में इस रामायण पर अधिकार बतलाने की बात लेकर झगडा शुरू हुआ। इस झगडे का फैसला करने का काम शकरजी को सौपा गया। शकर भगवान् ने इस रामायण को तीनो लोक में समान रूप से बाटना शुरू किया। तेंतीस करोड, फिर तेंतीस लाख, इस तरह समान विभाजन करते-करते अत में एक श्लोक रह गया। रामायण के अनुष्टुप छन्द का वह श्लोक बत्तीस अक्षरो का था। दस-दस अक्षरो का विभाजन करने के बाद दो अक्षर बचे। तब शकर भगवान् ने कहा, "मैंने आपका झगडा मिटाने का काम किया, उसकी मजदूरी तो मुझे मिलनी ही चाहिए। बचे हुए दो अक्षरो का विभाजन नही होता इसलिए ये दो अक्षर मै अपने लिए रख लेता हू।" कौनसे थे वे अक्षर ? "राम" नाम। सारी रामायण उन्होने तीनो लोक में बाट दी और उसका सार दो अक्षरो मे ग्रहण किया। वही रामनाम मुख से लेकर परमेश्वर और धर्म के विषय की अपनी निष्ठा—जो सारे जीवन-भर अखड जागृति रखकर उन्हीसे प्राप्त की थी—उन दो अक्षरो में जाहिर करके गाधीजी चले गये।

इस प्रकार एक पूर्ण जीवन हमारे सामने है। "पूर्ण जीवन" से मेरा मतलब अव्यग या सकलाग नही है। किसी भी देहधारी मनुष्य का जीवन वैसा नही हो सकता। गाधीजी खुद भी कहते थे कि मै एक सामान्य मनुष्य हू। रास्ता तय कर रहा हू। भगवान् की कृपा से जितना तय कर सका, किया है। अभी तक मुसाफिरी मे हू, मुकाम पर नही पहुचा हू। इसलिए "पूर्ण जीवन" का अर्थ, एक समाप्त हुआ जीवन, यही लेना चाहिए। अब हम तटस्थता से और समग्रता से उनके विचारो का अभ्यास कर सकते है, ऐसी स्थिति है।

तटस्थता से इसलिए कि देहधारी व्यक्ति के चले जाने से उसके विषय में हमें होनेवाला लोभ और मोह अब रुकावट नही डालेगा। गाधीजी देहधारी थे तब उनके नेतृत्व का लोभ हमें था। और शायद खास विचार न करते हुए हम उनका कहना मान लेते थे। आज उस

नेतृत्व का लोभ नही रहा, इसलिए उनके विचारो का अभ्यास अब तटस्थता से और निरपेक्ष बुद्धि से हम कर सकते है। विचारो का अभ्यास तटस्थता मे ही होना चाहिए। विचारो को स्वतत्र कसौटी पर कस लेना चाहिए। व्यक्तिगत जीवन के उदाहरण, बहुत हुआ तो, केवल विचार-प्रकाशन के साधन के तौर पर लेना हो तो ले सकते है। लेकिन उससे अधिक मूल्य व्यक्तिगत चरित्र को देना उचित नही है। विचारो को अलग रखकर देखना लाभदायक होता है। वैसी सहूलियत पहले की अपेक्षा अब अधिक हो गई है।

और समग्रता से अभ्यास कर सकते है, इसका अर्थ यह है कि मनुष्य का जीवन जबतक समाप्त नही होता है तबतक उसके विचारो मे परिवर्तन होता रहता है, इसलिए विचारो का सम्पूर्ण दर्शन नही होता है। खास करके जो नित्य निरतर प्रगति करते है, उनके विचारो का विकास आखिर मे बहुत तेजी से होता है। तुकाराम के जीवन में यही दीखता है। वह सतत प्रयत्नशील महापुरुष था। वासनाओ के क्लेश मे से मुक्त होने के लिए उनका इतना जोरदार झगडा चलता था कि वैसा दूसरा उदाहरण कम मिलेगा। लेकिन आखिर के, शायद दो-चार-छ महीनो के समय मे, उन्होने जो महान् अनुभव प्राप्त किया, वह उसके पहले कभी भी नही किया था। तुकाराम के आध्यात्मिक जीवन की उज्ज्वल पराकाष्ठा आखिर के दिनो मे ही दिखाई देती है। उसके पहले की उनकी साधक-दशा उनके अभगो मे खुली प्रकट होती है। आखिर के दो-तीन महीनो मे तुकाराम ने जितनी ऊची उडान ली है, उतनी सारे जीवन मे भी वे नही ले सके थे। गाधीजी की हालत भी बहुत-कुछ ऐसी ही है। "बहुत कुछ" इसलिए कहता हू कि दो जीवनो की अक्षरश तुलना करने-जैसी स्थिति नही है। एक का जीवन गहराई के साथ-साथ व्यापक और सामाजिक था, तो दूसरे का समाज-सेवाभिमुख होते हुए भी अत्यन्त गहरा व्यक्तिगत था, मन से विराट् और विशाल होते हुए भी गहराई मे उतरा हुआ था। ऐसी हालत मे तुलना करना गलत है। दोनो का ही जीवन महान् था।

लेकिन एक बात मे उनमें साम्य था। गाधीजी ने भी अपने अतिम जीवन मे जितनी ऊची उडान ली थी, उतनी पहले कभी नही ली थी। उडान उन्होने पहले भी ली है। लेकिन यह अतिम उडान हनूमान के जैसी थी। उनका जीवन समाप्त होने से उनके विचारो की समग्रता हमारे सामने है, इसलिए वह चिंतन का उत्तम विषय बन सकता है। उनकी मृत्यु के छ महीने पहले के उनके विचार लेकर यदि हम कुछ निष्कर्ष निकालने बैठते तो सही निष्कर्ष नही निकाल पाते, इतना उनका स्वतत्र दर्शन आखिर के दिनो मे हुआ। यह दर्शन पहले के जीवन से विसगत नही था, सुसगत ही था। लेकिन अभी मैंने उपमा दी, उस तरह वह हनूमान की उडान थी। अब उनका व्यक्तिगत जीवन समाप्त ही हो गया है, इसलिए उनके विचारो का समग्रता से हम विचार कर सकते है। और गाधी-तत्त्व-ज्ञान-मदिर बनाकर धूलिया वालो ने वह जिम्मेदारी उठाई है, इसकी ओर मैं उनका ध्यान खीचना चाहता हू ।

उसके लिए क्या करना चाहिए, यह भी कहने का मेरा विचार है। आज के एक व्याख्यान में वह विषय पूरा नही होगा। और एक-दो व्याख्यानो की जरूरत होगी। लोगो के कर्त्तव्य की ओर मैंने आज इशारा किया। अब उसकी कुछ तफसील भी बतानी है। उसमें से एक वस्तु आज कहकर दूसरी कल के लिए छोड दूगा।

पहली बात यह कि यद्यपि इसको गाधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर नाम दिया है, फिर भी यह जीवन-तत्त्वज्ञान-मन्दिर होना चाहिए। सक्षेप में कहे तो यह केवल तत्त्वज्ञान-मन्दिर ही है। गाधीजी का नाम है, इसलिए केवल गाधीजी के विचारो का अभ्यास करेंगे और अनादि काल से जो अनेक विचार इस भाग्यवान देश को मिलते आये है, उनकी ओर ध्यान नही देंगे, ऐसी वृत्ति नही होनी चाहिए। यह मेरी पहली सूचना है। गाधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर यानी गाधीजी की प्रेरणा लेकर जीवन के तत्त्वज्ञान का अभ्यास करनेवाला मन्दिर। गाधीजी की प्रेरणा का उसको आधार है, इतना ही इस नाम का अर्थ है। गाधीजी के विचारो के मुताबिक चलने का प्रयत्न

अल्प ही सही, देश ने किया है । उनके विचारो मे भारतीय सस्कृति का उत्तम परिपाक मिलता है, दुनिया के विचारो का सत्-अग मिलता है । इसलिए उनके विचारो का अध्ययन अवश्यमेव करना चाहिए । लेकिन केवल उनके ही विचारो का अध्ययन, ऐसा अर्थ इस मन्दिर का न हो, नही तो गाधीजी की सारी शिक्षा ही हम भूल गये, ऐसा होगा । उनसे जब कभी कोई कहता कि अमुक वात आपने नई बताई तो वे कहते —"मुझे नही लगता कि मैंने कोई नई वात बताई है । आज तक अनेक सतो ने जो वात कही है, उस पर इस युग मे कैसे अमल किया जाय, इसका मै प्रयत्न कर रहा हू, वस इतना ही कह सकता हू ।" उनके कहने मे केवल नम्रता थी, ऐसा मै नही मानता वस्तुस्थिति वैसी ही है। तुकाराम भी यही कहता था। 'आम्मी वैकुठवासी आलो याचि कारणासी, वोलिले जे ऋषि साच भावे वर्ताया ।" ऋषि वोल गये और सन्त कह गये वह सत्पुरुषो का मार्ग लुप्त हो गया। उसको फिर से अमल मे लाने के लिए हम भगवान् के सेवक अपने स्थान से थोडी छुट्टी निकाल कर यहा आये है। यही भाषा ईसा की थी। वह कहता था—"मै पुरखाओ की सिखावन मिटाने के लिए नही, वल्कि उसकी पूर्णता करने आया हू ।" शकराचार्य इतने महान्, लेकिन वे अपना विचार उत्तम तर्क से रखकर भी पुराने वचनो का आधार दिया करते। कोई कहते है, इस तरह आधार देना पगुता है। मै कहता हू, यह पगुता नही, वुद्धिमत्ता है। अनन्त अनुभवो से भरे अर्थघन और शक्तिशाली पुराने शब्द जो इस्तेमाल करता है, वह उनका ऋण कभी नही भूल सकता ।

एक वार मेरे एक मित्र मुहम्मद पैगवर के पुरुषार्थ का वर्णन करते हुए कह रहे थे—'अरब इतने जगली, लेकिन मुहम्मद ने उनको मानवता प्रदान की। मुहम्मद का यह कितना महान् पुरुषार्थ ! विलकुल गाधीजी की तरह ही है यह। गाधीजी ने हमारे जैसे दीन जनो को महान् बनाया।" मैने कहा—मुहम्मद पैगम्बर के बारे मे तुम्हारा खयाल गलत है। इसी तरह गाधीजी के बारे मे भी मुझे न तुम्हारी उपमा मान्य होती है, न उपमेय ही।

यह सही है कि दोनो महान् थे और दोनो ने महान् सुधारो द्वारा जनता को जाग्रत किया। इसीलिए तुकाराम कहता है—"इन सतो का मै कितना एहसान मानू ? वे निरन्तर मुझे जाग्रत रखते है।" लेकिन इस तरह जगाते हुए भी कोई नई वस्तु उन्होने दी है, ऐसा नही कह सकते। क्योकि यदि नई वस्तु दी होती तो उसके लिए हजारो नये शब्द उनको गढने पडते। ईश्वर, सत्य, प्रेम, दया, आदि सारे शब्द अरबी भाषा में थे ही। मुहम्मद ने इन पुराने शब्दो से ही काम लिया। इसका अर्थ यह होता है कि अरबो में ज्ञान पहले था ही। वह केवल लुप्त हो गया था। इतनी जागृति मुहम्मद ने की। गाधीजी ने भी यही किया।

इसलिए गाधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर के द्वारा गाधीजी के नाम से प्रेरणा पाकर तत्त्वज्ञानमात्र का व्यापक विचार होना चाहिए। यह पहली सूचना।

२

गाधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर की योजना यहा की गई है, उसका विनियोग कैसे किया जाय, इस सबध में हमने कल थोडी चर्चा की। व्यापक बुद्धि से जीवन के तत्वज्ञान का अध्ययन होना चाहिए, यह बात कल बताई थी।

अक्सर ऐसा दिखाई देता है कि अध्ययन करनेवालो के गुट बन जाते है। यही बात जहा-तहा अडगा डाल रही है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नही है। क्योकि मनुष्य मे अहकार होता है। वह किसी भी काम मे सकुचित वृत्ति निर्माण करता है। अध्ययन करनेवालो मे किसी एक चीज के अध्ययन के अलावा दूसरा कुछ देखना ही नही ऐसी वृत्ति होने लगती है। महाराष्ट्र मे भी ऐसा देखा जाता है कि वारकरी पथ के लोग "मनाचे श्लोक" नही पढेगे। उनमे सब लोग ऐसे होते है, यह मुझे नही कहना है, आम तौर पर ऐसा है। "मनाचे श्लोक" प्रसिद्ध होने के कारण वे अनायास कान पर पडते है, यह बात दूसरी है, लेकिन उसका अध्ययन वे नही करते। वैसे ही रामदासी पथ के कुछ लोग मैने ऐसे देखे है कि रामदास के छोटे-मोटे सब ग्रन्थो का वे अध्ययन करेंगे, लेकिन ज्ञानेश्वरी नही पढेंगे। यह स्थिति महाराष्ट्र में ही है, ऐसा नही है, दूसरी जगह भी यही हाल है।

इस तरह का पाथिक अध्ययन करनेवालो का बचाव इस तरह कर सकते है कि मनुष्य सब ग्रन्थो का अध्ययन नही कर सकता, इसलिए कुछ ग्रन्थो तक का मर्यादित अध्ययन वह करता है। यह गुण भी कहा जायगा, बशर्ते कि सकुचित बुद्धि रखकर वैसा अध्ययन न होता हो। और वह मै मान्य भी करूगा। लेकिन फिर भी उसमे एकागिता टलनेवाली नही है। सर्वांगिता होनी चाहिए। उसके लिए अपना विशिष्ट अध्ययन करके उसके इर्द गिर्द के विचारो का सामान्य अध्ययन भी करना चाहिए। केवल भक्तिभाव के विषय मे कहा जाय तो भक्तिभाव का परिपोष करनेवाला एकाध ग्रन्थ भी मनुष्य के लिए काफी हो सकता है और उतने से वह सतुष्ट हो सकता है। वह कह सकता है कि इस पुस्तक के आधार से मेरे भक्तिभाव का परपोष हो जाता है, इसलिए दूसरी पुस्तको के अध्ययन की मुझे जरूरत नही पडती।

लेकिन गाधीजी के विचारो के बारे मे ऐसा नही कह सकते। क्योकि उनके दिये हुए विचार केवल भक्तिभावपोषक नही है, वे जीवनव्यापी है और जीवनव्यापी विचार जब हम चितन के लिए लेते है तब उसके जैसे जो दूसरे विचार उपलब्ध होते है उनका अभ्यास किये बगैर उसकी पूर्णता नहीं होती। पूर्णता के लिए इस तरह अभ्यास की जरूरत होती है, इतना ही नही, बल्कि सत्य दर्शन के लिए भी उसकी जरूरत होती है। इसलिए गाधीजी के विचारो का अभ्यास व्यापक बुद्धि से होना चाहिए। ऐसा नही होना चाहिए कि गाधी-तत्त्वज्ञान का मनन तो हुआ है, लेकिन दूसरे-दूसरे तत्त्वज्ञान का केवल अज्ञान है। यह बात कल बताई।

भी कह सकते है, क्योकि यहा पर जमी हुई सत्ता को उखाड फेंकने के एक कार्यक्रम में हम मशगूल थे और अध्ययन के लिए जो कुछ मौका मिला वह जेल मे ही मिला, अन्यत्र कम ही मिला ऐसा कह सकते है। लेकिन हमारे लोगो को केवल मौका कम मिला ऐसा नही है, ऐसे अध्ययन की जरूरत भी हमे महसूस नही हुई, यह जरूर मै दोष मानता हू। अब तक वह नही खटका। क्योकि एक जोशीला कार्यक्रम हमे आगे बढाना था, उसमें हमारा अज्ञान छिप गया। लेकिन इसके आगे हमारा विचार समाज में मान्य होने के लिए सुव्यवस्थित रीति से उसका अभ्यास होना चाहिए। उस विचार के पीछे जो तत्त्वज्ञान है वह हृदय पर अकित होना चाहिए, केवल विशिष्ट आचार रख कर काम नही चलेगा। उसको मजबूत नीव की जरूरत है। हमे कुछ तात्कालिक काम नही करना है, बल्कि दुनिया मे जो विचार-प्रवाह आज जारी है तद्विरोधी विचार-प्रणाली कायम करनी है। उसके लिए उत्तम तत्त्वज्ञान की नीव उस विचार-प्रणाली को चाहिए। हमारा विचार तत्त्वज्ञानपूर्वक नही होगा तो हमारी ही वृत्ति डावाडोल रहेगी। इस सम्बन्ध में साम्यवादियो की दृष्टि मुझे ठीक लगती है। वे तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते है और तत्पूरक अपने विचार सामने रखते है। हम भी तत्वज्ञान को बाद नही कर सकते।

इस विषय में हमारे यहा का उदाहरण देना हो तो शकराचार्य का दे सकते है। उन्होने तत्त्वज्ञान की मजबूत नीव डाली। जो आचार समाज को उन्होने सिखाया उसके मूल मे जो तत्त्वज्ञान था वह बुद्धिमत्ता से समाज के गले उतारा। वह तत्त्वज्ञान जिनको जचे वे ही मेरा आचार ग्रहण करें ऐसा उन्होने कहा। मेरी राय मे उनकी यह बडी महत्ता थी। बिना तत्त्वज्ञान समझे लोग मेरे आचार का अमल करें ऐसी इच्छा उन्होने नही रक्खी, इतना ही नही, बल्कि निष्ठापूर्वक यही कहते थे कि मेरा तत्त्वज्ञान जचता हो तभी मेरा आचार ग्रहण करो, अन्यथा स्वतत्र रीति से उस आचार की मुझे कोई जरूरत नही है। उनकी यह दृष्टि गहरी है। वैसी ही होनी चाहिए। इसकी तुलना में साम्यवादियो की दृष्टि उतनी गहरी नही है। अपने विचारो

को यद्यपि उन्होंने तत्त्वज्ञान का आधार दिया है तो भी उनका आचार के बारे में बहुत आग्रह है।

लेकिन यह बात हमारे ध्यान में जितनी आनी चाहिए, उतनी अभी तक नहीं आई है। विशिष्ट आचार पर हमने जोर दिया, लेकिन उसके पीछे जो तत्त्वज्ञान था, उसका विचार नहीं किया। मैंने ऐसे भी लोग देखे हैं जो दस-दस साल गांधीजी के काम में जुटे रहे लेकिन खुद गांधीजी के विचारों तक का भी अभ्यास उन्होंने नहीं किया। और पूछे तो कहते थे, "उनका काम ही तो हम कर रहे हैं, फिर अध्ययन करके नया क्या मिलनेवाला है? हम जो कर रहे हैं, उसकी पुष्टि उस विचार में की है, यही न?" लेकिन इस बात का उन्होंने खयाल नहीं किया कि गांधीजी जिस तरह निरन्तर काम करते रहे, वैसे निरन्तर विचार भी देते रहे। बिलकुल आखिर के दिन भी एक मसविदा लिखकर वह गये। वह क्या पागल थे इसलिए? वह विचारों का महत्त्व जानते थे। लेकिन हम सेवकों को विचारों के चिन्तन का महत्त्व महसूस नहीं हुआ। हम लोगों का यह हाल हो रहा है, यह ध्यान में आकर भी उस समय के धांधली के कार्यक्रम के कारण उन्होंने उस तरफ ध्यान न दिया हो, यह भी संभव है।

नाम तत्त्वज्ञान-मन्दिर है, फिर भी उसका पूर्ण अर्थ लेना चाहिए। यहा जैसे गोशाला और तेलघानी चल रही है वैसी कुछ सेवा और कर्मयोग यहा निरन्तर चलना चाहिए। तत्त्वज्ञान-मदिर की वात तो क्या, मैं सामान्य मदिरो से भी यह अपेक्षा रखता हू कि जिसमे किसीका विचार भेद होने का कारण नही है ऐसी सर्वमान्य, निर्विवाद शुद्ध धर्मसेवा वहा चले। फिर तत्त्वज्ञान-मदिर में तो वैसी सेवा चलनी ही चाहिए। तत्त्वज्ञान का अभ्यास और कर्मयोग मिलकर एक परिपूर्ण दर्शन यहा होना चाहिए।

३

यहा के तत्त्वज्ञान-मदिर से हम क्या अपेक्षाए रख सकते है, इस पर गत दो दिनो से विचार हो रहा है।

एक अपेक्षा यह कि यहा से जीवन के तत्त्वज्ञान का अभ्यास और प्रचार हो सके। अगर नाम देना हो तो मैं समझता हू, हम इसे सर्वोदय का तत्त्वज्ञान कह सकते है। "सत्याग्रह का तत्त्वज्ञान"—यह नाम भी शायद फब सकता है। लेकिन अगर कोई एक ही शव्द निश्चित करना हो तो सर्वोदय अधिक ठीक होगा। सत्याग्रह शव्द आचार-निष्ठ अधिक है। शव्द विचार-सूचक होना चाहिए। सर्वोदय वैसा हो सकता है। सर्वोदय के स्वरूप के वारे मे इस वक्त नही कहूगा। उस सम्वन्ध मे एक-दो वार पहले सूचित कर चुका हू।

सर्वोदय का तत्त्वज्ञान कुल मिलाकर समन्वयात्मक है। यानी सारे विचारको को एकत्र लाने की शक्ति सर्वोदय के विचार में है। हिन्दुस्तान की सस्कृति ही ऐसी है कि समन्वय उसके रोम-रोम मे भिदा हुआ है। उसकी पूर्णता सर्वोदय के विचार से हो सकती है। सर्वोदय का वैसे किसी के साथ विरोध रहने का कारण नही, किन्तु उसका उन सवसे विरोध है जो यह मानते है कि सवका उदय न हो, कुछ अल्पो का और विशिष्टो का ही हो, तथा यह मानते है कि कुछ जाति अथवा लोग श्रेष्ठ है और उन्हीके हाथों मे सत्ता रहनी चाहिए। और यह विरोध ऐसा है कि किसी भी तरह मिट नही सकता, या तो यह रहे या वह, इतना विरोध दोनो में है। जिनकी

कल्पनाए जातिवाद की अथवा पांथिक राज्य की है, या जो किसी वर्ग-विशेष की ही उन्नति को प्रधान मानते है—फिर वह वर्ग बहुसख्यक हो या अल्पसख्यक—और जो औरो की पर्वाह नही करते, उनका वह विरोध करेगा। अगर वह विरोध नही करेगा तो फिर उसका प्रयोजन ही क्या रहा ? प्रकाश अगर अधकार का विरोध नही करेगा तो वह खुद का ही उच्छेद कर लेगा। इसलिए इतना तो विरोध रहेगा ही। परन्तु बाकी सारे विचार-प्रवाह सर्वोदय मे समा सकते है। उसके प्रकाशन की जिम्मेवारी यहा के लोगो पर है।

प्रत्यक्ष सेवा नही करते थे। वर्धा में जब उस काम का प्रारम्भ हुआ तब रचनात्मक कार्यक्रम मे उसका समावेश किया गया। कल्पना से ही कोई कार्यक्रम बनाना होता तो आज की दस-पन्द्रह बातो के बजाय सौ-दो सौ बताई जा सकती थी। लेकिन उससे कोई लाभ न होता। उनका तरीका यह था कि देश के सामने वही कार्यक्रम रक्खा जाय जिस पर थोडा-बहुत अनुभव जरूर हुआ है। बाकी स्वतत्र रूप से जिसे जो कार्यक्रम करना हो, उसे वैसी आजादी और सुविधा थी ही। इसी वृत्ति से धीरे-धीरे वह अधिक विस्तृत कार्यक्रम देश के सामने रखते गये। अब वह व्यवस्थित रूप मे हमारे सामने है। सर्वोदय-समाज द्वारा उस सबका अच्छा सकलन हुआ है।

इस तरह जब एक सुव्यवस्थित कर्मयोग सम्मुख होता है तो कार्यकर्त्ताओ को भी सात्वना मिलती है। कार्यकर्ता से यह कहना कि "एक तत्त्वज्ञान तुझे दिया है, अब जैसा सूझे कर" गैरवाजिब नही है। लेकिन उसमें उसको सात्वना नही मिलती, स्पष्ट दिशादर्शन नही होता। अबतक सभी ने बताया कि निष्काम कर्मयोग किया जाय। लेकिन इसका निर्णय नही हुआ कि वह कर्मयोग क्या और कैसा हो। पुराने लोग यज्ञयागादि को कर्म समझते थे। बीचवालो ने उसमे दान, धर्म, तपस्या आदि जोडकर स्पष्टीकरण किया कि कर्म यथावर्ण या यथाआश्रम किया जाय। हो सकता है कि उस जमाने मे वे कर्म उपयोगी सिद्ध हुए हो। फिर भी जितनी स्पष्टता से यह कार्यक्रम रक्खा गया है उतनी स्पष्टता से वह नही रक्खा गया था। अगर कोई आग्रह करे कि पुराने जमाने के यज्ञयाग आज भी करने चाहिए तो वह गलत होगा। कर्मयोग अद्यतन यानी आज की आवश्यकता के अनुरूप चाहिए। वह निष्काम और निरहकार करना होता है। और निरहकार तब हो सकता है जब वह चालू प्रवाह के अनुरूप हो। अगर यज्ञयाग का कर्मयोग आज समाज के सामने कोई रक्खेगा तो वह जट्टहासपूर्ण चालू प्रवाह से असगत और इसलिए अहकारमय होगा। कार्यक्रम आज की आवश्यकता के अनुरूप हो तो निष्काम और निरहकार

बुद्धि से उसपर अमल किया जा सकता है। मनुष्य कर्म निरहंकार बुद्धि से करता ही है, ऐसा नही है। वह तो उसकी जागृति पर निर्भर है। लेकिन करने की इच्छा हो तो ऐसे कर्मयोग मे वह सुविधा रहती है। और इस कार्य-क्रम में वह सुविधा हुई है, इसलिए उसका दर्शन यहा होना चाहिए। दृष्टि यह रहनी चाहिए कि कुछ-न-कुछ कर्मयोग का यथाशक्ति आचरण यहा हो रहा है। यह हुई दूसरी जिम्मेदारी। इसका विवेचन कल के तथा परसो के व्याख्यान मे किया गया है। आज उसीका अधिक स्पष्टीकरण किया।

लेकिन दोनो बातो से भी समग्र विचार नही होता। और भी एक महत्त्व की बात है जो इस विचार को परिपूर्ण करती है। और वह है जीवन-शुद्धि की साधना। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, अस्वाद, निर्भयता इत्यादि एकादश व्रत गाधीजी बता गये। इसे जीवन-शुद्धि की साधना, व्रतनिष्ठा अथवा चाहे तो सत्याग्रह निष्ठा भी कह सकते है। अर्थ कुल मिलाकर ही है। जीवन किसी विशेष श्रद्धा पर खडा होना चाहिए। एक दिशा मे बहने के कारण नदी का पानी फूटता नही और इसलिए उसमे से कारगर ताकत प्रगट होती है। जीवन-नदी भी इसी तरह निश्चित ध्येयानुसार बहती रहनी चाहिए। सारा विचार और सब-का-सब कर्मयोग विशिष्ट निष्ठा पर रचा जाना चाहिए, इसीलिए इन ग्यारह व्रतो की योजना की गई है।

वरना अहिंसा, सत्य आदि चारित्र्य के परिपालन की बात तो भक्तिमार्ग में भी नारदादि ने बताई है। भक्तिमार्गियो में इस बारे में ढिलाई दीख पडती है। मै उन्हे उसके लिए विशेष दोष नही देता, क्योंकि भक्तिमार्ग की मुख्य कल्पना है परमेश्वर की भक्ति से पावन होना और यद्यपि इसके इर्द-गिर्द वे चारित्र्यबल आदि आवश्यक मानते है, लेकिन वे श्रद्धा रखते है कि ईश्वरभक्ति से ये बाते सध जायगी। यह श्रद्धा ग़लत है। भक्ति-मार्ग का स्वरूप ही ऐसा होना चाहिए कि जीवन उत्तरोत्तर शुद्ध करते जाय, अवगुणो को विवेकपूर्ण काटते जाय और सत्यनिष्ठा बढाते जाय। यह सही है कि भक्ति के कारण यह निष्ठा बढेगी। परन्तु भक्तिमार्गियो को इस बात का अहसास कम है कि गुण-विकास के लिए हृदय खुला रखने की आवश्यकता है। यह एक विशेष भक्तिमार्ग है जो गाधीजी ने बताया है। उससे भक्ति का स्पष्टीकरण होता है और गलतफहमी के लिए गुजाइश नही रहती। मै रोज़ प्रार्थना करता हू, लेकिन अगर मेरे चित्त से द्वेषभावना दूर नही होती तो मेरी भक्ति की कसौटी हो जाती है और सिद्ध हो जाता है कि इसमें हार्दिकता नही है। किबहुना, यही प्रार्थनादि भक्ति के अगो की आवश्यकता है। सही प्रार्थना तब होती है जब आत्मपरीक्षण द्वारा मै महसूस करता हू कि अहिंसादि के परिपोष का निरन्तर प्रयत्न करते हुए भी अवगुण रोडे अटकाते है, मेरे प्रयत्न असफल रहते है और सहायता के लिए मै भगवान के चरणो में दौड जाता हू। इसलिए अहिंसादि के व्रतपालन के साथ-साथ नामस्मरण की आवश्यकता गाधीजी ने बतलाई। रामदास ने भी कहा है—"आचरण को बदलकर भक्तिमार्ग का ही अनुसरण करो।" वही है यह। भक्तिमार्ग को इससे दृढता मिलती है। जीवनशुद्धि की यह साधना हमारे आचरण में होनी चाहिए। यह तीसरी जिम्मेवारी।

सर्वोदयकारी हमारा तत्वज्ञान, रचनात्मक कार्यक्रम हमारा कर्मयोग और नामस्मरण मे तथा परमेश्वर की सहायता लेकर अहिंसादि व्रतो का आचरण हमारा भक्तिमार्ग, ऐसा है यह जीवन का त्रिविध सम्यक् दर्शन, जिससे पावन होनेवाली है दुनिया। उस सारी दुनिया का मध्यबिंदु है मैं

और मेरा जीवन। इसलिए मुझे फिक्र रखनी चाहिए कि मुझमे ये तीनो बाते हर रोज स्थिर होती जाय।

गाधी-तत्त्वज्ञान-मदिर,
धूलिया, ११-१२-१३, १९४९

: १२ :

विश्वमंगल का ध्येय

आपके इस जिले मे मैं कई जगह जाकर आया हू। वेलूर और अजन्ता की गुफाए देखकर आया, यह कहने की जरूरत ही नही है, क्योकि दुनिया-भर के जितने भी प्रवासी हिंदुस्तान में आते हैं, वे इन गुफाओ का दर्शन किये बगैर नही जाते और हिंदुस्तान की धर्मभावना की साख अपने साथ लेकर वे जाते है। लेकिन जितनी कुशलता और धर्मनिष्ठा इन दो गुफाओ ने प्रगट की है, उतनी ही कुशलता और धर्मनिष्ठा प्रकट करनेवाली ऐसी ही दूसरी कलाकृतिया आपके जिले के इस दो महापुरुषो ने निर्माण की है। उनके जन्मस्थान भी मै देख आया हू। मेरा लक्ष्य इस समय ज्ञानदेव और एकनाथ की तरफ है, यह आपके ध्यान मे आया ही होगा। इन्होने जो कलाकृतिया निर्माण की है, वे मेरी दृष्टि से अनमोल है और अगर मुझे भगवान ने चुनाव ही करने को कहा कि तू पत्थरो मे खुदी हुई इन कला-कृतियो को लेने को तैयार होगा या ज्ञानदेव और एकनाथ की अत्यत कला-पूर्वक तैयार की हुई कलाकृतियो को, और दोनो मे से कोई एक ही तुझे मिलेगी, तो मैं नि शक होकर ज्ञानदेव और एकनाथ की अत्यत कलापूर्वक तैयार की हुई, सबको ज्वलन्त और जिन्दा निष्ठा सिखानेवाली उनकी वाङ्मयात्मक कलाकृतियो को ही पसद करूगा। ज्ञानदेव और एकनाथ दोनो उन गुफाओ को देख आये थे, क्योकि वे इसी प्रदेश में रहनेवाले थे और ज्ञानदेव ने तो उसका जिक्र भी किया है।

"ज्ञानदेवें केलें गीदे देशीकार लेणे" कारीगरो ने जिस प्रकार गुफाओ में कलाकृति निर्माण की है, वैसे ज्ञानदेव कहता है कि मैंने भी गीता मे से

एक कलाकृति निर्माण की है और एकनाथ ने भागवत मे से एक कलाकृति निर्माण की है। मेरी अपने लोगो से प्रार्थना है कि वे इन दोनो कलाकृतियो का बारीकी से अभ्यास करे।

ज्ञानेश्वरी और भागवत दोनो अनुपम ग्रन्थ है और वे जिन्दा धर्म का उपदेश करते है, सारे भेदो से पार हमको ले जाते है, जीवन को हमेशा मार्ग दर्शन करते है और व्यक्ति और समाज का कर्तव्य सिखाते है। एक मुसलमान भाई की एकनाथ के बारे मे लिखी हुई पुस्तक हाल ही मे मुझे मिली है। मै उसको अभी पूरी तरह पढ नही पाया हू, लेकिन सरसरी निगाह से देख गया हू। उस भाई को एकनाथ की लिखी हुई चीज इस्लाम की शिक्षा को अच्छी तरह मजबूत बनानेवाली मालूम हुई। दरअसल बात ऐसी है कि ज्ञानदेव और एकनाथ की लिखावट मे कही भी सकुचित भाव नही है। सारे मानव-समाज का हित ध्यान मे रखकर ही उन्होने लिखा है। इसलिए मेरी तो सिफारिश है कि हमारे यहा के मुसलमान भाई भी श्रद्धा से, प्रेम से और विश्वास से उनके ग्रन्थो का अभ्यास करे। उनका कुछ भी नुकसान होनेवाला नही है। उलटे उनकी धर्मनिष्ठा बढेगी परस्पर सद्भाव पैदा होगा और जीवन का अधिक स्पष्ट दर्शन उनको होगा, ऐसा मै यकीन दिला सकता हू। ज्ञानदेव ने तो लिखा ही है कि लिखने का या बोलने का ढग ऐसा ही होना चाहिए जिसमे कि एक को लक्ष्य करके कहते हुए भी सबके हित का वह हो—'एका बोलिले होय सवा हि हित।' यानी वह कथन सर्वोपयोगी हो, सर्वोदयकारी हो। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के निमित्त तो कहा, लेकिन सारी दुनिया को भी लाभ होगा इस प्रकार का उनका उपदेश था। वही भूमिका ज्ञानदेव और एकनाथ की है और आज की हिन्दुस्तान की जरूरत भी वही है।

हिंदुस्तान को चाहिए। भगवान ने हिन्दुस्तान को एक सकुचित राष्ट्र नही बनाया है, बल्कि एक खण्डप्राय या राष्ट्रसमूहप्राय महान् देश बनाया है। ऐसे देश के लोगो को छोटे-छोटे अहकार रखना कभी लाभप्रद नही होगा। मैं मराठी, मै बगाली, मै गुजराती, इस तरह की भावना मारक होगी, तारक नही होगी। मैं हिंदू, मैं मुसलमान, मै क्रिस्ती, इस तरह की भावना ऐक्य पैदा करनेवाली नही, बल्कि विरोध पैदा करनेवाली होगी। जाति का, भाषा का या पथ का अभिमान जिसको कहते है, वह अभिमान रखकर हिंदुस्तान का हित होनेवाला नही है। ऐसी ही हिन्दुस्तान की रचना भगवान् ने की है इतना ही नही, बल्कि 'मै भारतीय हू' यह अभिमान भी हिंदुस्तान के कल्याण का नही होगा। देश पर, प्रात पर, भाषा पर, धर्म पर प्रेम रहे, लेकिन अभिमान न रहे। भारतीयत्व का भी अगर अभिमान हम रखेगे तो वह दुनिया के आज के प्रवाह के खिलाफ होगा और दुनिया में विसवाद पैदा करेगा। उसमे से श्रेय नही होगा। हिंदुस्तान का श्रेय नही होगा और दुनिया का भी कल्याण नही होगा। हिंदुस्तान से तो दुनिया यही अपेक्षा रखती है कि सारी दुनिया मे जब विरोध निर्माण होगा तब उसमे मे समन्वय पैदा करने का काम हिंदुस्तान करे। और हिंदुस्तान वह करेगा, इस आशा मे दुनिया हिंदुस्तान की तरफ देखती है। यह बात एशियन कान्फ्रेंस जैसी घटना से आपके ध्यान मे आई होगी। स्वराज्य प्राप्ति के बाद हिंदुस्तान मे जो दुर्दैवी घटनाए हुई, उनसे यद्यपि हिंदुस्तान की इज्जत घटी है, फिर भी वह तात्कालिक हवा थी। आई और गई, और आखिर हिंदुस्तान की जिस विशुद्ध आत्मा का नेतृत्व कहने की अपेक्षा प्रतिनिधित्व गाधीजी ने किया, उससे दुनिया को एक आशा बधी है। दुनिया की वह आशा अगर हम पूरी नही करेंगे तो उसमे से निर्माण होनेवाली निराशा हमारे ऊपर हमला किये बगैर नही रहेगी। इसलिए हमारे इस देश मे ऐक्य बना रहे, इस ख्याल से अगर हम भरतखण्ड का भी अभिमान रखेगे तो वह लाभदायी नही होगा। इसलिए आखिर हम देश की सेवा करें, देश पर प्रेम रखें, लेकिन अभिमान छोडें। और हम मानव है, यही महसूस करें।

इतना नही, वल्कि ज्ञानदेव ने अर्जुन का नाम लेकर हमारा शुद्ध स्वरूप समझाते हुए यहा तक कह दिया है कि 'मै अर्जुन हू' यह अर्जुनत्व भी छोड दे और फिर जो शुद्ध अहम् वचेगा, वही तेरा रूप है।' वही वोध हम सव सीखे। व्यापक, विराट्, स्वच्छ और स्वतन्त्र होकर सेवा करते रहो। जो सेवा करोगे, वह एक छोटे गाव की होगी तो भी चलेगा, एक छोटे कुटुम्व की होगी तो भी चलेगा, एक सामान्य रोगी की होगी, तो भी चलेगा या मा जैसे अपने लडके की सेवा करती है, वैसे एक लडके की होगी, तो भी चलेगा। लेकिन वह लडका, वह रोगी, वह गाव, जिसकी भी सेवा होगी, वह सारे विश्व का प्रतिनिधि है, इस भूमिका से सेवा होनी चाहिए। और मै सर्व-सेवक हू, सारे विश्व का सेवक हू, मै हरिदास हू, मै हरिसेवक हू—इस भूमिका से सारी सेवा होने दो। फिर तुम्हारा और तुम्हारे देश का देखते-देखते उत्थान होगा और वह उत्थान दूसरे सब लोगो के उत्थान को मदद पहुचानेवाला होगा।

जव कोई अभिमानी सघटना पैदा होती है तव वह हिंसक शक्ति को आह्वान करती है, और हिंसक शक्ति जव किसी राष्ट्र में खडी होती है तव वैसी ही दूसरी हिंसक शक्ति अन्यत्र निर्माण होती है। और इस प्रकार अनेक हिंसक या अभिमानी सघटनाये दुनिया मे अगर पैदा होती है तो शक्ति का जोड नही वल्कि शक्ति का ह्रास होता है। हिंदुस्तान मे अगर एक दस सेर की अभिमानी और हिंसक सघटना निर्माण हुई और वैसी ही आठ सेर की एक अभिमानी और हिंसक सघटना मान लीजिए कि चीन मे निर्माण हुई तो सारी दुनिया मे दस और आठ मिलकर अठारह सेर शक्ति निर्माण नही होती, वल्कि १०—८=२, दो सेर शक्ति हो जाती है। इस तरह हिंसक और अभिमानी सघटनाए एक दूसरी का क्षय करती है, एक दूसरी की पुष्टि नही करती। जो सघटनाए अभिमान पर खडी होती है, वे कुल मिलाकर दुनिया का शक्ति-क्षय करती है! दुनिया को उन्नत नही करती! दुनिया को वेचैन करती है, वेहाल करती है। इसके विपरीत, अभिमान-रहित, प्रेमाधिष्ठित, निरहकार, अहिंसक और व्यापक सघटना जव किसी देश में

निर्माण होती है तब अपने जैसी दूसरी सघटना को प्रेरणा देती है। और वे दो या तीन जितनी भी होगी, सब मिलाकर दुनिया की शक्ति को बढाती है, उनसे शक्ति-सवर्द्धन होता है। शक्तिवर्द्धनकारी सघटना अगर निर्माण करनी है तो ज्ञानदेव कहते है 'मै अर्जुन' यह मिट जाना चाहिए। मेरा अर्जुनत्व छोडकर जो परिशुद्ध 'मै' अदर उठता है उस "मै" का अनुभव लेना चाहिए, और जिसकी मैं सेवा करता हू, उसका "तू" छोडकर, उसकी सारी उपाधियो को (अधिकारो को) छोडकर, वह भी विश्व का एक प्रतिनिधि है, इस कल्पना से सेवा होनी चाहिए। इस तरह सेव्य और सेवक दोनों जब सारे सकुचित अभिमानो को छोडकर एकत्र आते है तब सर्वोदय होता है, विश्व-मगल होता है, सबका उत्थान होता है, गीता जिसको 'सर्वभूतहित' कहती है, वह उससे सपन्न होता है।

हम लोगों ने शब्द बहुत व्यापक लिया है। 'सर्वमानवहित' कहना भी हमको अच्छा नही लगता। 'सर्वभूतहित' यही भाषा हमारे हृदय को जचती है, हृदयगम होती है। लेकिन मानव का कार्य मानव से ही शुरू होगा। इसलिए सर्वमानवहित सिद्ध करना, यही प्रत्यक्ष कार्य हम कर सकते है। उसमे से ही भगवान् की कृपा से सर्वभूतहित सिद्ध होनेवाला है। यह एक ऐसा ध्येय है कि जिससे हरएक नवयुवक को उत्साह मालूम होना चाहिए। हिंदुस्तान में स्वराज्य नही था, दूसरो का राज्य था। आपके इस निजाम के राज्य में भी एक विषम सत्ता काम कर रही थी। वह अब गई है। हिंदुस्तान के ऊपर का भी बोझ गया है। इससे एक निषेधक कार्य हुआ है। लेकिन अब कुछ विधायक ध्येय हमारे सामने होना चाहिए। अपने ऊपर का एक बोझ हटाना है, इस निषेधक लेकिन समान ध्येय के कारण जिस प्रकार सब लोग मिल-जुलकर काम कर रहे थे, वैसे अब एक विधायक ध्येय, विश्व-मगल का ध्येय, हमको सिद्ध करना है। सर्वोदय सिद्ध करना है, यह बात नवयुवको के सामने रहनी चाहिए और ऐसा ध्येय सामने रखकर उनको अपनी सारी शक्ति इस ध्येय की सिद्धि के काम में लगा

देनी चाहिए। हमारा सारा मनन, हमारा सारा चिन्तन, हमारा आचरण और हमारा सारा साहित्य इस ध्येय की सिद्धि के लिए खर्च होना चाहिए। काया, वाचा, मन से, दिल खोलकर, अगर हम इस ध्येय की सिद्धि के लिए प्रयत्न करेंगे तो यह ध्येय हम प्राप्त कर लेंगे, इसमे मुझे जरा भी शका नही है। क्योकि आज सारी दुनिया बहुत नजदीक आ गई है। एक दूसरे का एक दूसरे पर अतिशीघ्र परिणाम होने जैसी स्थिति इस समय है।

लोग मुझे पूछते है—"दुनिया मे हिंसा की हवा बह रही है, हिन्दुस्तान उससे कैसे बचेगा ?" मै उनसे कहता हू 'हिदुस्तान मे हम अहिंसा की हवा निर्माण करेंगे, दुनिया उसमे से कैसे बचेगी ?" दुनिया का मुझ पर असर होता है, ऐसा कहने वाले से मै कहता हू, "अरे बुद्धू, दुनिया का अगर मुझ पर असर होता है तो मेरा भी दुनिया पर असर होता है, इतनी बात भी तू नही समझता है ?" और इस दुनिया मे सत्व गुण की जो ताकत है, वह रजोगुण मे या तमोगुण मे हो ही नही सकती। जिसका बल सत्वाधिष्ठित है, उसी का परिणाम सारी दुनिया पर होनेवाला है। जिसका बल रजोगुण का है या तमोगुण का है, उसका परिणाम सत्वगुण पर होना नामुमकिन है। तू अच्छी तरह से ध्यान मे रख कि रजोगुण में बहुत हुआ तो जोश रहता है, लेकिन जोश यद्यपि रहता है, फिर भी बुद्धि नही होती। और जिसमे बुद्धि नही है, ऐसा बिना अकल का जोश आखिर परास्त हो जाता है। बुद्धि के सामने उसका कुछ भी नही चलता। सत्वगुण मे बुद्धि है और इसलिए हिन्दुस्तान अगर सत्वनिष्ठा का एक सकल्प निर्माण करेगा तो वह बलशाली होगा। आज दुनिया हिंसा मे इतनी परेशान है कि इस तरह के सकल्प के लिए विचारवान लोगो के मन अनुकूल हो गये है। इस दशा मे हिंदुस्तान का सकल्प सारी दुनिया मे फैल सकता है। वह फैलाने की हिम्मत हम रखे और काम मे लग जाय।

सरस्वती-भवन, औरंगाबाद
२३ मार्च, १९४९

: १३ :

सर्वोदय-विचार का विवरण

आप जानते है कि आजकल मै सर्वोदय-समाज की कल्पना का प्रचार करता हुआ हिंदुस्तान में घूम रहा हू। जिस काम के लिए यहा आया हू-वह भी सर्वोदय का ही एक हिस्सा है। इसलिए सर्वोदय की कल्पना आपको थोडे में समझा दूगा।

लोग पूछते है कि आपने यह नया शब्द क्यो निकाला? लेकिन दर असल यह नया शब्द नही है। गाधीजी ने कई साल पहले इसका उपयोग किया है। लेकिन इस समय नये सिरे से इसका व्यापक प्रचार किया जा रहा है। लोगो में भी यह शब्द चल पडा है। लेकिन सर्वोदय के अर्थ की ठीक कल्पना वहुत लोगो को अभी तक नही आई है। और जहा अर्थ ही ठीक तरह से मालूम न हो, वहा उसके अमल का विचार दूर की चीज है।

सर्वोदय शब्द अगर इस समय न आया होता तो स्वराज्य प्राप्ति के वाद या तो हम ध्येयविहीन वन जाते या गलत ध्येय मे फस जाते। हमारा ध्येय क्या होना चाहिए, इसका ठीक दर्शन 'सर्वोदय' शब्द कराता है। आज तक स्वराज्य शब्द से प्रेरणा मिलती रही। दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी आदि लोगो ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए तपस्या की। काग्रेस ने और दूसरे लोगो ने ७०-७० साल इसके लिए मेहनत की। और अव एक तरह का स्वराज्य हमें प्राप्त हुआ है। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले यह शब्द हमें प्रेरणा दे रहा था। लेकिन अव हमे कोई ऐसा दूसरा शब्द चाहिए जो हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में हमको प्रेरणा देगा। सर्वोदय ऐसा शब्द है। स्वराज्य का काम भी सर्वोदय के अन्तर्गत ही था।

क्योकि जबतक यह देश दूसरे के पजे मे गुलाम पडा था तबतक सबका उदय होना असभव था। इसलिए पहले देश को आजाद करने की ही जरूरत थी। वह सर्वोदय की पहली सीढी थी। इसके आगे सबका उदय हो, इस ध्येय को सामने रखकर हमारे शिक्षण मे, सभ्यता मे और नित्य के व्यवहार मे हमे खयाल रखना चाहिए।

सर्वोदय की कल्पना हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे भी मिलती है। ऋषि गाता है—'सर्वे न सुखिन सतु'। उसने "सब" शब्द मे केवल मानव-समाज का ही समावेश नही किया है, बल्कि उन जानवरो का भी समावेश कर दिया है, जिनको मनुष्य ने अपने कुटुम्ब का एक हिस्सा मान लिया था। सब प्राणियो को तो हम अपने कुटुम्ब मे स्थान नही दे सकते थे। जिनका उपयोग हम कर सकते है, उनकी ही रक्षा की चिन्ता हम कर सकते है। बाकी सब प्राणियो की रक्षा करने के लिए तो भगवान बैठा है। मनुष्य गाय-बैलो का उपयोग करता है, इसलिए उनको उसने अपने कुटुम्ब मे स्थान दिया। ऋषि कहता है—"श नो अस्तु द्विपादो, श नो अस्तु चतुष्पादो" दो पाव वालो का और चार पाववालो का (मनुष्य का और गाय का) भला हो।

एक जमाना था जब गायो की अच्छी रक्षा होती थी। दिलीप जैसा राजा गाय की सेवा में किस तरह निष्ठापूर्वक तन्मय हो गया था, उसका सुन्दर वर्णन महाकवि कालिदास ने रघुवश मे करके गोसेवा का एक अद्‌भुत आदर्श पेश किया है। ऐसा ही चरित्र भगवान् श्रीकृष्ण का है। इसलिए हिन्दुस्तान मे गोपालकृष्ण का नाम रूढ हुआ। लेकिन यह बात आगे नही रही और हम गायो की उपेक्षा करने लगे। प्राणियो की बात छोड दो, मानव-मानव के साथ भी हम कठोरता से व्यवहार करने लगे और इसी कारण यह देश बरसो से परतन्त्र रहा।

अब स्वराज्य आया है तो सर्वोदय का ध्येय हमको सिद्ध करना है। पहले तो हमको मानवो के साथ प्रेम से व्यवहार करना सीखना है। जहा एक मानव दूसरे मानव पर आक्रमण नही करता है, जहा सबकी फिक्र की जाती है, जहा उच्च-नीच-भाव नही है, ऐसा देश दुनिया मे शायद ही

हमारे धर्म में चातुर्वर्ण्य के नाम पर उच्च-नीच-भाव पैदा हो गया। मूल मे चातुर्वर्ण्य एक सहकारी सस्था के तौर पर बना था—शुरू में केवल एक ही वर्ण था, ऐसा वर्णन उपनिषदो में आता है। उस वर्ण से सारे काम पूरे नही हो सके तो उसकी मदद के लिए क्षत्रिय वर्ण और बाद में वैश्य वर्ण बनाया गया। उससे भी काम पूरा न हो सका तो शूद्रवर्ण—यानी सबका पोषण करनेवाला वर्ण-निर्माण हुआ, ऐसा वर्णन आता है। मतलब, ये सारे वर्ण परस्पर पूरक है और हरेक वर्ण की योग्यता दूसरे सब वर्णो के बराबर है, बशर्ते कि हरेक अपना काम निष्ठापूर्वक करे। और जो अपनी सेवा भगवान् को अर्पण करता है, वह चाहे किसी भी वर्ण का क्यो न हो, मोक्ष का अधिकारी बनता है, यह गीता में बताया गया है। एक मामूली झाड़ू लगानेवाला और एक महान् ज्ञानी, दोनो अगर अपना काम दक्षता से और ईश्वर समर्पण बुद्धि से करते है तो दोनो की योग्यता समान है और दोनो मोक्ष के अधिकारी बनते है। लेकिन यह तो मूल शास्त्रकार की कल्पना हुई। आगे उसमें दोष उत्पन्न हुए और उच्च-नीच-भाव दाखिल हुआ। सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण, उससे नीचे क्षत्रिय इत्यादि जब सीढिया बन गई तब हिंदू धर्म का ह्रास हुआ।

इस हालत मे दूसरे धर्मो के लोग यहा आये तो उनके धर्म का प्रचार यहा शीघ्रता मे हुआ, क्योकि इस तरह का ऊच-नीच-भाव उनके धर्मो मे नही था। सबके साथ उन्होने समानता से व्यवहार किया और यहा के लोगो का प्रेम सपादन किया। मुसलमानो ने या क्रिस्ती लोगो ने अपने धर्म का प्रचार यहा केवल सत्ता के बल पर किया, यह पूर्ण सत्य नही है। क्रिस्ती लोग एक हजार साल पहले दक्षिण भारत में आये थे। उनकी सत्ता तो अभी तीन सौ साल पहले यहा कायम हुई थी। इस्लाम का प्रचार मुसलमान राजाओ ने नही, बल्कि फकीरो ने किया था। फकीरो का असर उस समय हिंदुस्तान की जनता पर कितना था, इसकी कल्पना शिवाजी के उस कथन से मिलती है जिसमे उसने कहा कि "हिंदू धर्म की रक्षा के लिए मैने

फकीरी ली है।" इतना आदर फकीरो के लिए था। उन्होने यहा समानता का प्रचार किया। हिंदूधर्म मे फैली हुई विषमता के विरोध मे इस्लाम की यह समानता लोगो को आकर्षक मालूम हुई, इसलिए निचली जातियो के लोगो ने इस नये धर्म का स्वीकार किया। ऐसा सब इतिहास है।

यह इतिहास अगर हम ठीक ध्यान मे लेगे तो उसमे से ही सुधार की दिशा मिल सकती है। हम जब सर्वोदय का विचार करते है तो ऊच-नीच-भाववाली यह वर्णव्यवस्था दीवार की तरह सामने खडी होती है। उसको तोडना होगा, तभी सर्वोदय स्थापित होगा। जिस समाज के ऋषियों ने सबका भला हो, इस भावना से आरभ किया, उस समाज मे आज मानव-समाज के वीच का विषम भाव यहा तक पहुच गया है कि कुछ मानवों के स्पर्श में भी पाप माना जाता है। इन सारे भेदो को मिटाना होगा।

इस प्रकार जैसे सामाजिक क्षेत्र मे काम करना होगा, वैसे आर्थिक क्षेत्र में भी करना होगा। यन्त्रो के कारण आर्थिक विषमता और भी वढी है। कुछ लोगो के हाथ मे अधिक सपत्ति जमा होती है तो कुछ लोगो को काम ही नही मिलता है। मिल का कपडा सस्ता पडता है, ऐसा लोग मानते है। लेकिन मिलो के कारण जो लोग बेकार हो जाते है, उनको समाज को खिलाना तो पडता ही है। उसका खर्च मिलो पर चढाकर हिसाब कीजिए तो मालूम होगा कि मिल का कपडा खादी से कई गुना महगा पडता है। यन्त्रो के कारण यूरोप-अमेरिका जैसे देशो में भी यह हालत हो गई है और आर्थिक विषमता वढी है। सर्वोदय का ध्येय सामने रखकर काम करेंगे तो ही यह समस्या मिट सकती है।

सर्वोदय को सफल वनाने के लिए हिन्दू-मुसलमान आदि जाति-भेदो को भी मिटाना होगा। ये अलग-अलग धर्म उपासना के अलग-अलग प्रकार है, ऐसा समझना चाहिए। भगवान् अनन्तगुणी है। इसलिए उसकी उपासना के भी अनत प्रकार हो सकते है। उसके कारण हमार मन मे द्वेष की भावना नही होनी चाहिए। इस दृष्टि से हमारी विधान-सभा ने अभी जो निर्णय किया है, वह वहुत महत्त्व का है। इसके आगे धर्म के आधार पर कानून में

कोई भेद नही किया जायगा, ऐसा उस निर्णय का अर्थ है। मेवो को बसाने का जो काम सरकार कर रही है, वह इस निर्णय को मजबूत बनाने वाला है। बीच में जो गडबड हुई, उस समय ये लोग हिन्दुस्तान के दूसरे प्रातो में भाग गये थे। अबतक बेघरबार पडे थे। उनको अपने-अपने घरो में बसाकर सरकार एक अन्याय को दूर कर रही है। इस तरह से सामाजिक भेद-भाव मिटाना और आर्थिक विषमता दूर करना, दोनो मिलकर सर्वोदय बनता है।

इसमें और एक तीसरी कल्पना है। सर्वोदय की दृष्टि से जो समाज रचना करनी है, उसका आरम्भ अपने निजी जीवन के परिवर्तन से करना है। हम व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे असत्य और हिंसा का उपयोग नही करेगे, ऐसी प्रतिज्ञा करनी होगी। समाज मे जो विषमता है, उसको हम अहिंसा से ही मिटाना चाहते है। समानता तो कम्युनिस्ट भी चाहते है, लेकिन समानता का उनका खयाल हमारी कल्पना से भिन्न है। हरएक गाव और हरएक व्यक्ति स्वावलबी होना चाहिए, यह उनकी कल्पना मे नही है। अच्छे साध्य के लिए चाहे जो साधन इस्तेमाल कर सकते है, ऐसा वे मानते है। हिन्दुस्तान मे अगर यह बात चली तो सर्वोदय तो दूर रहा, हमारा स्वराज्य भी खतरे में आ जायगा। उद्देश्य किसीका कुछ भी हो, बुरे और हिंसक साधनो का उपयोग हम करेगे ही नही, यह मर्यादा अगर न रही तो हिन्दुस्तान खत्म हो जायगा। चीन और ब्रह्म-देश की मिसाल हमारे सामने है।

इसलिए मै तो कहता हू कि सर्वोदय की कल्पना से जवानो में उत्साह का सचार होना चाहिए। सारी दुनिया मे सर्वोदय को फैलाने का काम हमके आगे करना है। लेकिन जो निज का उद्धार करता है, वही दुनिया के उद्धार का रास्ता खोल देता है। इसलिए सर्वोदय की कल्पना का ठीक अध्ययन करके उसका अपने जीवन मे अमल शुरु कर देना चाहिए।

प्रार्थना-सभा, भरतपुर
१२ जून, १९४९

: १४ :

सर्वोदय की मनोवृत्ति

अभी हमने कुछ अच्छे अर्थवाले श्लोक सुने है। इनमे से दो श्लोक ऐसे थे, जिनमे यह इच्छा प्रकट की गई है कि "सब का भला हो, सब सुखी और सब आरोग्यवान् हो।" ये बहुत पुराने श्लोक है। हम लोगो मे से बहुत से इन्हें जानते है और रोज बोलते भी है। आजकल हमने गाधीजी का सर्वोदय शब्द चलाया है। यह शब्द नया-सा दीख पडता है, मगर इसका सारे-का-सारा भाव ये जो श्लोक हमने बोले है, उनमे मिलता है। फिर भी 'सर्वोदय' शब्द नया क्यो लगता है?

सबका भला हो, ऐसा न चाहनेवाले दुनिया में शायद ही कोई होगे। और जो होगे भी तो उनकी मनोवृत्ति आसुरी होगी। जिनमे मानवी प्रेरणा होती है, वे सबका भला तो चाहते ही है, मगर अपना भला भी चाहते है। सबका भला न चाहनेवाले बहुत ही कम होगे और अपना भला न चाहनेवाले शायद ही कोई मिलेगे। मगर सबके भले और अपने भले के बीच समन्वय कैसे हो?

सारी दुनिया वाद में दु खी रहती है तो मेरा सुख भी नही रह सकता, यह वुद्धिमान पुरुप वखूवी जानता है। मै सुखी रहू, इसलिए सवको सुख मिले, इस तरह की भावना में भी वीर्य नही होता। चूकि इसमें मेरा सुख प्रधान होता है, इसलिए यह निर्वीर्य भावना हुई। ऐसी भावना से कोई काम नही वनता। जिस इच्छा मे त्याग की भावना नही होती तो वह सुप्त इच्छा होती है। सोया हुआ विद्वान भी अविद्वान के वरावर होता है। जो विद्वान सोया हुआ है उसकी विद्वत्ता का कोई उपयोग नही हो सकता। इस प्रकार सुप्त इच्छा भी अनिच्छा के वरावर होती है। सर्वोदय में इच्छा यह रहती है कि पहले सवका उदय हो, उसीमें मेरा उदय होगा। जवतक सवका उदय नही होता तवतक मै अपना उदय नही चाहता। एक मा यही कहती है कि जवतक मेरे सव वच्चो को पानी नही मिल जाता तवतक मुझे पानी नही चाहिए। मान लीजिए, उसके पास एक कटोरा पानी है। वह तवतक अपनी प्यास नही वुझायगी जवतक कि सारे वच्चो की प्यास नही वुझ जायगी। अगर पानी शेप नही वचता है तो वह खुद ही आतरिक सुख अनुभव करेगी। यही माता का मातृत्व है।

इसका मतलव यही हुआ कि माता की यह भावना अपने वच्चो के साथ सर्वोदय की भावना है। निस्सदेह उसकी भावना उसका समाज या उसका सर्व अपने वच्चो तक ही मर्यादित है, इसलिए उसकी सर्वोदय की भावना भी मर्यादित है। यह उपमा सर्वोदय का अर्थ प्रकट करने के लिए दी गई है। साराश यह है कि सवकी भलाई के लिए त्याग करने के लिए तैयार रहना चाहिए और इस त्याग में जो वाह्य दु ख होता है उससे आतरिक सुख का भी अनुभव होना चाहिए। वाह्य अर्थ में हमको दु ख भोगना होगा, लेकिन आतरिक अर्थ में तो हम सुखी होगे। जो लोग अपनी आत्मा का कल्याण चाहते है, वे वाह्य कष्टो से कभी घवराते नही। जिस समाज मे उस तरह की भावना होती है, उसमें भोग प्रधान नही, वल्कि त्याग प्रधान होता है। यज्ञ करने के वाद जो अग्नि शेप होती है, उसीसे उसकी तृप्ति होती है। यह भोग भी अभोग के समान है, क्योकि वह त्यागमय होता है।

"ईशावास्यमिद सर्वं" के श्लोक में भी यही चीज है कि मनुष्य सबकुछ अपने समाज को दे देता है और जो सहज भाव से उच्छिष्ट मिल जाय, उससे सतुष्ट रहता है। यही सर्वोदय का स्पष्ट अर्थ है। इसी भावना मे यदि हम ये श्लोक पढते है तो वे सर्वोदय के श्लोक होते है। सर्वोदय के लिए मानव मे केवल आसुरी मनोवृत्ति का न होना ही काफी नही। उसमे उत्तम मानवी वृत्ति का होना जरूरी है और वह यह कि "मै सबके पीछे और बाकी सब मेरे आगे।"

राजघाट, दिल्ली
२४ जून, १९४९

: १५ :

सर्वोदय-समाज का सन्देश

आप जानते है कि आजकल मै हिंदुस्तान में घूम रहा हू। अभी यहा तामिलनाड में कुछ रोज विताये, और भी कुछ रोज देना चाहता हू। जहा जाता हू वहा लोगो को सर्वोदय-समाज क्या चीज है, यह जान लेने की उत्सुकता रहती है। यह एक कल्पना अभी हिंदुस्तान में फैल गई है और लोगो को उसके वारे में आशा भी है। लेकिन सर्वोदय-समाज आसमान से नीचे गिरनेवाला नही है, हम लोगो को ही उसको बनाना है। सर्वोदय-समाज अगर हम अपने जीवन में नही लाते है तो उसको दुनिया में नही ला सकेंगे। सर्वोदय का अर्थ होता है सबका भला, सबकी उन्नति, समाज में जो लोग पिछडे हुए है, गरीब है, दुर्वल है, उनका भी समाज में उतना ही स्थान होना चाहिए जितना दूसरे समर्थों का है।

यह सर्वोदय शब्द नया नही है। न उसकी कल्पना ही नई है। सर्वोदय के वारे में हम बहुत प्राचीन काल से वोलते आये है, सोचते भी आये है, "सर्वे न सुखिन सतु", सब सुखी हो, कोई भी दुखी न हो, यह वासना सब धर्मों में है। लेकिन यह विचार यद्यपि हम लोगो में चलता है फिर भी उसका अमल नही हुआ है। आज दुनिया में जो कुछ हाल दीख पड रहा है वह इसके अनुकूल नही है। लेकिन इसका मतलव यह नही है कि यह विचार दुनिया में फैल नही सकता है। वास्तव में दुनिया इस वक्त वहुत दुखी है और सबके उदय का रास्ता कोई वतायेगा तो देखना चाहती है। लेकिन लोग एक ऐसे जमाने में आ रहे है कि जिसमें उनको यह रास्ता नही मिल रहा है। यत्रयुग आया है ऐसा लोग वोलते है और वहुत बडे पैमाने पर उत्पत्ति होनी चाहिए,

ऐसी इच्छा करते है। उत्पत्ति बढाने की कोशिश करते है, फिर भी लोगो को खाने को नही मिल रहा है। इतना बडा यह देश है, लेकिन उसको बाहर मे अनाज मगाना पडता है। जैसे अभी हिंदुस्तान मे दु ख है, उससे भी ज्यादा दुखी देश चीन है। यहा भी हिंदुस्तान जेसी बडी लोकसख्या है। दुनिया के दूसरे विभागो मे भी आम लोग सुखी नही है। कुछ लोग मौज मजा कर रहे है, लेकिन उनको भी सच्चा सुख नही मिल रहा है। वे एक कृत्रिम जीवन जी रहे है। जो लोग अपने हाथ से काम नही करते, उनको भूख भी नही लगती। खाना हजम नही होता है तो अच्छा नही लगता है। दूसरो को लूटकर श्रीमान् बने है तो हृदय मे शाति नही मिलती, समाधान नही मिलता। मैंने ऐसे श्रीमान् लोग देखे है जो रोते है, उनको सुख नही है। पूछते है कि सुख कैसे मिलेगा, वह रास्ता बताइए। शरीर मे भूख नही, चित्त मे समाधान नही, समाज मे लोग उनको प्रेम-भाव से देखते नही, क्योकि उन्होने दुनिया की सेवा नही की तो दुनिया भी उन पर प्रेम नही करती। तो जिनको आरोग्य प्राप्त नही, प्रेम प्राप्त नही, शाति प्राप्त नही, उनको क्या सुख मिलेगा? इस तरह से जो श्रीमान् लोग दुनिया मे पडे है वे भी सुखी नही है और जो गरीब मजदूर काम करते है, उनको भी सुख नही है, क्योकि उनके जीवन की आवश्यकता पूर्ण नही होती। इस तरह सारी दुनिया अभी दु ख का अनुभव कर रही है।

पीडा दी जाती है, वे अगर पूछे मनुष्यो से कि "अरे इन्सान, क्या तू हमको पीडा देकर सुखी हो रहा है ?" तो इसका हम यह जवाब नही दे सकेंगे कि हम आरोग्यवान् हो गये है। तो फिर जो चूहा पूछेगा कि "हमको भी सताते हो और तुम्हारा भी रोग नही मिटता तो यह क्या बुद्धि तुमको सूझ रही है ?" तो उसको हम क्या जवाब देंगे ? मतलब यह है कि जिंदगी कैसे जीना, यह हम नही जानते है।

हमारे शास्त्रकारो ने हमको बहुत समझाया है कि यह मनुष्य-देह अत्यन्त दुर्लभ है, बहुत पुण्य से मिलता है। मनुष्य-देह को क्यो भाग्य का और पुण्य का लक्षण समझते है ? इसलिए कि दूसरे जानवर स्वार्थी होते है, उनको दूसरे जानवर की सेवा नही सूझती, मनुष्य-जन्म मे ही सेवा हो सकती है। भूख लगने पर खानेकी इच्छा हरएक प्राणी को होती है, वैसे मनुष्य को भी होती है। लेकिन मनुष्य की खूबी यह है कि वह दूसरे को खिलाकर खुद भूखा रह सकता है और भूखो को खिलाकर खुद भूखा रहने मे उसको आनन्द का अनुभव होता है। यह आनन्द पशुओ मे नही है। पशुजन्म पाप भोगने के लिए है और देवताओ का जन्म पुण्य भोगने के लिए है। दोनो में पुरुषार्थ नही है। मनुष्य-जन्म पुरुपार्थ के लिए है। उसमे न पाप को भोगना है, न पुण्य को भोगना है, बल्कि सेवा करनी है। इसलिए मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ माना है और देवता भी मनुष्य-जन्म की इच्छा रखते है। इस तरह का मनुष्य-जन्म हमको मिला है, लेकिन हम अपना ही स्वार्थ देखते है, दूसरो की पर्वा नही करते है तो शाति कैसे मिलेगी ? सर्वोदय का अर्थ यही है कि हमको सबकी फिकर रखनी है।

यहा कूनूर मे और ऊटी मे गरीब भी पडे है और श्रीमान् भी पडे है, श्रीमान् आनन्द में रहने का आभास कर लेते है। लेकिन वे गरीबो की पर्वा नही करते। ऐसा ही चलेगा तो उनको सच्चा सुख नही मिलेगा और गरीबो को भी सुख नही मिलेगा। इसीलिए भगवान् ने गीता मे कहा है कि "हे मनुष्यो, तुम एक-दूसरे पर प्रेम करो, एक-दूसरे की मदद करो, एक-दूसरे की सेवा करो तो तुम्हारा भला होगा।" मानव-समाज परस्पर सह-

कार से ही उन्नति कर सकता है। जो लोग भाग्यवान् है, जिनके पास बुद्धि अधिक है, वल अधिक है, पैसा अधिक है, उनका यह काम है कि दूसरो की रक्षा करें। भगवान् हरेक की परीक्षा कर रहा है। अगर किसी को वह अधिक भाग्यशाली बनाता है तो उसकी परीक्षा करता है। श्रीमान् की परीक्षा वह यह करता है कि उसको पैसा दिया है तो उसका उपयोग वह गरीबो के लिए करता है या नही। अगर वह गरीबो की सेवा के लिए पैसे का उपयोग नही करता है तो भगवान् की परीक्षा मे फेल हो गया। अगर भगवान् किसी को गरीब बनाता है तो उसकी भी परीक्षा करता है। गरीब मनुष्य गरीबी के कारण अगर दीन बन गया तो भगवान् की परीक्षा में फेल हो गया। गरीब को दीन नही बनना चाहिए और श्रीमान् को उन्मत्त नही बनना चाहिए। इस तरह श्रीमान् और गरीब दोनो की परीक्षा हो रही है।

इसलिए इस छोटी-सी जिन्दगी मे हमारी परीक्षा हो रही है, इसका खयाल हमे रखना चाहिए और जो भी थोडे दिन इस दुनिया मे जीना है, सबकी सेवा करके, सब पर प्रेम करके, सबका प्रेम पा करके जाना चाहिए। जिसने दुनिया मे पैसा कमाया, लेकिन प्रेम गवाया, उसने कुछ नही कमाया। जिसने दुनिया में ज्ञान कमाया, लेकिन प्रेम नही कमाया, उसने कुछ नही कमाया। जिसने दुनिया मे वल-सपादन किया, लेकिन सबका प्रेम नही सपादन किया, उसने कुछ नही सपादन किया। इसलिए भाइयो, सब पर प्रेम करो और सबका प्रेम प्राप्त करो, यही सर्वोदय का सदेश है।

कुनूर, कोइम्बतूर
२५ अप्रैल, १९४९

सर्वोदय की दीक्षा

रचनात्मक काम करनेवाले सघ अब तक अलग-अलग अपना काम कर रहे थे। यथाप्रसग उनमे यद्यपि सहकार भी होता था, फिर भी एकागी दृष्टि के कारण अहिंसक जीवन का तेज उनमें से पैदा नही होता था। इसलिए सब मिलकर सम्मिलित काम करें, इसकी जरूरत महसूस होने लगी। रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन में उस तरह का प्रस्ताव भी हुआ। उस प्रस्ताव के अनुसार वे सघ एकीकरण की दृष्टि से सोचने भी लगे है। सघ सम्मिलित हो, इसका अर्थ यह है कि कार्यकर्ता अपने जीवन मे वैसा परि-वर्तन करें। इस दृष्टि से हरएक कम-से-कम निम्नलिखित बातो का अमल करे, ऐसा मार्गदर्शन कराया गया है। चरखा-सघ ने इस तरह का प्रस्ताव भी किया है।

(१) नियमित रूप से सूत काते।

(२) खुद के या कुटुम्ब मे कते सूत की और उसकी पूर्त्ति के लिए प्रमाणित खादी-भडार की खादी पहनें।

(३) जहा तक बने, ग्रामोद्योगी चीजो का इस्तेमाल करे।

(४) घर में हो तब विशेषत गाय के दूध का उपयोग करे।

(५) महीने में कम-से-कम एक बार भगी-काम या ग्राम-सफाई करें।

(६) जहा इतजाम हो, वहा अपने बच्चो को बुनियादी तालीम दिलावें।

(७) नागरी, उर्दू और कोई द्रविड लिपि का अभ्यास करें।

इसमें से एक-एक का सिलसिलेवार विचार करेंगे।

(१) नियमित कताई के कर्मकाड की इसमें कल्पना नही है। जीवन-निष्ठा दृढ करने के लिए यह एक चिह्नमात्र है। छोटे-बडे सबसे मिलकर इस तरह की कुछ प्रत्यक्ष कृति करने से शक्ति का साक्षात्कार होता है। यह सर्वोदय की दीक्षा है। बनी बनाई पूनी मे से कातने की कल्पना न करें। कपास लेकर तुनाई आदि क्रिया करके पूनी बनाई जाय। यह कातने का ही हिस्सा माना जाय। किसी दिन काता न गया और केवल पूनी ही बनाई तो कोई हर्ज नही है। काता हुआ सूत दुवटा करके रखने से काम पूरा हुआ समझा जायगा।

(२) जो उत्तम सूत कात सकते है, वे अपने सूत का कपडा दूसरो को देकर उनके मोटे सूत का कपडा खुद पहने तो नियम मे बाधा नही आयगी। स्वावलबन-सहित परस्पर सहकारसपन्न करना और भी अच्छा है। प्रमाणित खादी-भडार पूर्त्तिमात्र के लिए हो। वही मुख्य ग्रथ न बने।

(३) ग्रामोद्योगी चीजे बहुत है, इसलिए 'बने वहा तक' का शब्द प्रयोग किया है। किसी निमित्त से छुटकारा पाने का उसमें हेतु नही है। नियम की अपेक्षा दृष्टि महान् है। अगर दृष्टि है तो सब नियम आखवाले बन जाते है। दृष्टि के बिना वे अधे और भार-रूप हो सकते है।

(४) गाय के दूध का नियम, ग्वाला दूध मे पानी मिला कर जैसे उसको पतला बनाता है वैसे, पानी डालकर हलका बनाया है। मुसाफिर की दिक्कत उसमे नही है। भैस का विरोध नही है। भैस का कुछ-न-कुछ रक्षण होता ही है। गाय को विशेष रक्षण की आवश्यकता है। उतनी ही उसमे दृष्टि है।

(५) 'हरिजन' और 'परिजन' का भेद अगर नष्ट करना है तो हरिजनो के माने गये कामो की अस्पृश्यता नष्ट होनी ही चाहिए। उसके लिए मान्यता के तौर पर यह नियम है। हरएक गदगी करता है और हरएक को उसे साफ करना है। यह रोज का काम ही है। जो उच्च वर्ण के माने गये है, वे अगर उत्साह से और निर्मलता से उसमे हिस्सा लेगे तो एक सामाजिक क्राति होगी, जिसकी आज बहुत जरूरत है।

(६) बुनियादी तालीम सबसे अच्छी तालीम है, ऐसा जिनका विश्वास है, वे दूसरो के लडको मे उसे बाटते फिरे और खुद के लडको को उससे वचित रक्खें, इसका कोई मतलब नही है । इसीलिए यह नियम शब्दो मे ग्रथित करने की भी जरूरत नही थी । लेकिन भूतदया के जोश में मनुष्य कभी-कभी खुद को भूल जाता है, इसलिए इस वाङ्मय की रचना करनी पडी ।

(७) नागरी और उर्दू के साथ एक द्रविड लिपि और जोड दी गई है । यह मेरी खास सूचना है । सारे हिंदुस्तान की एकता उसके बगैर सिद्ध होनेवाली नही है । लिपि के साथ भाषा अपने आप आती है । द्रविडो की चार भाषाए, तीन लिपिया है । एक सीख लेने से हेतु सफल होता है। विचार ध्यान में आ जाय तो मुश्किल कुछ भी नही है, और जरूरत बहुत है । उत्तर की लिंग-भेद से पीडित भाषाए दक्षिण के लोगो के लिए जितनी मुश्किल है, उससे दक्षिण की भाषा उत्तरवालो के लिए अधिक मुश्किल नही है, यह मै अनुभव से जानता हू । वह कुछ भी हो, लेकिन एकता के लिए हम उनको हिंदी सिखलवावे और हम कुछ न करते हुए मुफ्त मे एकता साध्य करने का पुण्य हासिल करे, यह शोभा देनेवाला नही है । और दीर्घ दृष्टि से देखा जाय तो यह चलने वाला भी नही है। लिपि सीखने का सरल तरीका यह है कि वर्णमाला का सामान्य परिचय कर लेन के बाद गीता-जैसा परिचित ग्रथ उस लिपि मे पढा जाय । इससे लिपि आख में आसानी से भर जाती है । तामील या लोकनागरी की तरह सयुक्ताक्षर हलत चिन्ह से बनाये जाय तो लिपि सीखना एक खेल बन जायगा । लेकिन यह बात उन-उन भाषा-वालो को सूझेगी तब ।

जीवन-शुद्धि का यह कार्य-क्रम है । उन-उन सघो के लिए वह फर्ज होते हुए भी सबको करने लायक वह है । सर्वोदय-समाज के सेवक अगर उसके अनुसार कृति करेंगे तो सर्वोदय-समाज अग्नि की तरह चारो ओर फैलेगा । ये नियम केवल निर्देशक है । ऐसे और भी नियम जीवन-शुद्धि के खयाल से हरएक को अपने लिए बनाने चाहिए । लेकिन इसमे दो बातो

के परहेज का खयाल रक्खा जाय। पहली बात यह है कि नियमो का बोझ नही होने देना है। नियमो के कारण जीवन को दिशा मिलती है और जीवन आसान बनता है, ऐसा होना चाहिए। दूसरा परहेज यह है कि दूसरो के दोष देखने के खयाल से इन नियमो का उपयोग नही करना है, नही तो सकुचित बुद्धि और भेद-भाव उसमें से निर्माण होगा। ये दो बाते सभालकर "नियमो का पालन करें अगर सेवक बनना चाहें।"

'सेवक', वर्धा
१५ अप्रैल, १९४८

सर्वोदय-दिन का कार्यक्रम

गाधीजी का निर्वाण-दिन इस महीने की ३० तारीख को आता है। उस दिन उनको गये एक वर्ष पूरा होता है। देश-भर में, हरएक गाव मे, उस निमित्त कुछ-न-कुछ कार्यक्रम होगा और उचित भी है। और महान् पुरुषो के स्मरण का आधार हमारे जैसे सामान्य लोगो को आवश्यक होता है।

मैं उस दिन को गाधी-स्मरण-दिन न कहते हुए सर्वोदय-दिन कहता हू, क्योकि आखिर व्यक्ति की अपेक्षा विचार पर दृष्टि स्थिर होना अधिक लाभदायी है। मै हाल ही में दादू-समाज में हो आया। उन लोगो को कह आया हू कि "दादू का नाम मिट जाय, भगवान् का रहे।" यहा भी मै वही कहता हू। गाधीजी को इस बात की विशेष फिक्र थी। उनके जन्म-दिवस को लोग गाधी-जयती कहते थे। लेकिन गाधीजी ने कहा कि "उसको आप चरखा-जयती कहें, इससे विचार आपके पास रह जायगा।" अफ्रीका से लिखा हुआ उनका एक पत्र हाल ही में मेरे देखने में आया। उसमें वे लिखते है कि "मेरा नाम मिटेगा तभी मेरा काम आगे बढेगा।" ज्ञानदेव ने भगवान् से मागा था—"माझी उरो नेदी कीर्ति, हें दान श्री पति मज द्यावें" (हे श्रीपति, मेरी कीर्ति न रहे, यह दान आप मुझे दीजिए)। ज्ञानेश्वरी में भी "माझें नाम रूप लोपो" (मेरा नाम और रूप मिट जाय), ऐसी आकाक्षा प्रगट की है। विचार जिंदा रहे। व्यक्ति मरने ही वाला है। ऐसा न होकर व्यक्ति का नाम ही जिंदा रहा तो हम खतरे में रहेंगे। फिर हम सकुचित ग्रथ बनाकर समाज में टुकडे पैदा करेंगे। इस तरह

से आज ही हिंदुस्तान में पाच-सात अवतार है और उनके भक्त उनके जिंदा रहते हुए ही उनकी पूजा कर रहे हैं। इसमें श्रेय नही है। गाधीजी खुद को सामान्य पुरुष समझते थे। उनको वैसे रहने देने मे ही सार है। उसमें से हमको बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। अगर नाम ही लेना है तो हत्याकारी का प्रहार शरीर को लगते ही सहज भक्तिभाव से जो नाम गाधीजी के मुख से निकला, वही हम क्यो न लें। इसलिए मै उनके स्मृति-दिन को "सर्वोदय-दिन" कहना चाहता हू।

इस दृष्टि से देखा जाय तो वह दिन क्रियाशील चितन मे हम व्यतीत करे तो बहुत भारी काम होगा। उस दिन सामुदायिक तौर पर कुछ क्रियात्मक कार्यक्रम होना चाहिए। हमारे जीवन मे निष्क्रियता बहुत है। कर्म द्वारा उपासना—जो सारे धर्मो की सिखावन है, लेकिन हम जिसको भूल गये है और जो गाधीजी के जीवन मे ओतप्रोत थी—हमारे जीवन मे स्थिर होनी चाहिए। इसलिए मै सुझाऊगा कि उस दिन सार्वजनिक सफाई का काम सब मिलकर करे। सारे भगी बनकर सारा देश आइने की तरह काम करे। भगियो को अस्पृश्य समझकर हमारे देश ने बडा पाप किया है और सारे देश मे इतनी गदगी पैदा करदी है कि वैसी दूसरे किसी भी सुधरे हुए देशमे देखने को नही मिलेगी। उसका प्रायश्चित्त हमको करना ही चाहिए। छोटे-बडे सब नम्र बने। सबसे जो नीच है, वह मै ही हू, इस भावना से यह सेवा का काम हम करे।

वैसे ही इस देश को उत्पादन की बहुत आवश्यक है। इसलिए सब लोग चरखा चलायें। प्रेम-सूत्र से सबके हृदय एक साथ मिलाये जाय। कातने का काम ऐसा है कि बहुत बीमार मनुष्य को छोडकर छोटे-बडे सब आसानी से कर सकते है। इसलिए उत्पादन की दृष्टि से सूत कातने का काम किया जाय।

ये दो क्रियात्मक कार्यक्रम हुए। इसके अलावा सामुदायिक प्रार्थना भी होनी चाहिए। उसमे सब जातियो के हृदय शुद्ध और एक भावापन्न हो। हो सके तो उस दिन फाका भी किया जाय। उससे शुद्धि मे मदद होगी।

सर्वोदय-विचार

इस कार्यक्रम के साथ सर्वोदय के विचार का चिंतन होना चाहिए। वह अनेक प्रकार से हो सकता है। चिंतन ऐसी महान् वस्तु है कि उसमे हम चाहे जितने गहरे जा सकते है। हमको विशिष्टो का उदय नही, वल्कि सवका उदय सिद्ध करना है, यह एक चिंतन हुआ।

किसीके भी हित से दूसरे किसीके हित का विरोध हो नही सकता है, सवके हित अविरोधी होते है। सात्त्विक, राजस और तामस के भेदो के कारण सुख-दुखो में भेद हो सकता है। लेकिन हितो में वैसा भेद नही होता है, यह दूसरा चिंतन।

मैं सवमें हू और सव मेरे में है, इसलिए सवकी सेवा में शून्य हो जाना मेरा कर्त्तव्य है, यह तीसरा चिंतन।

इसीमें से यह वात साफ हो जाती है कि यह सव सिद्ध करने के लिए सत्य का व्रत अनिवार्य है। हमारा किसी पर भी आक्रमण नही होगा, इसकी चिंता रखनी चाहिए, सयम सीखना चाहिए। इस तरह अनेक प्रकार से सर्वोदय का चिंतन उस दिन किया जाय।

भगवान् की हमारे देश पर वडी कृपा है कि पुराने जमाने से आज तक उसने असख्य सत्पुरुष यहा भेजे। उनकी मानो एक अखड मालिका ही उसने लगा दी। आज के जैसी गिरी हालत में भी हिंदुस्तान पर उसने सत्पुरुषो की वर्षा की। हम अगर अपने हृदय खुले रक्खेगे तो वे सत्पुरुष हमारे हृदय में जन्म लेंगे और हमारा ही रूपान्तर हो जायगा। भगवान् चाहेगा तो क्या नही होगा!

गांधी-तत्त्वज्ञान-मन्दिर, धूलिया

७ जनवरी, १९४९

बारह आना

विनोबाजी की अन्य पुस्तकें

1. विनोबा के विचार (दो भाग)
2. स्वराज्य-शास्त्र
3. ईशावास्योपनिषद्
4. स्थितप्रज्ञ-दर्शन
5. गांधीजी को श्रद्धांजलि
6. गीता-प्रवचन
7. शान्ति-यात्रा
8. ईशावास्यवृत्ति
9. भूदान-यज्ञ
10. राजघाट की सन्निधि में
11. सर्वोदय-यात्रा
12. विचार-पोथी